मुद्रक और प्रकाशक—
महालचन्द बयेद
ओसवाल प्रेस
१८६, क्रोस स्ट्रीट, कलकत्ता

विषय-सूची

कृतज्ञता

इस वीर-प्रसविनी भारत वसुन्धरा ने एक-से-एक बढ़कर वीर-नारियों को जन्म दिया है। उन वीराङ्गनाओं की कीर्ति-कौमुदी दिग् दिगन्त में फैली हुई है और यश-पताका फहरा रही है। उनके विलक्षण वलिदान की गुणगाथाओं को पढ़ने से पाठकों के मस्तक श्रद्धा पूर्वक उनके पाद-पद्मों में झुक जाते है। उनके आश्चर्यकारी वीरता पूर्ण कार्यकलापों से परिचित होना प्रत्येक नर नारी का कर्तव्य है। कारण जो देश अपनी नारियों की वीर-गाथाओं और आदर्श चरित्र के इतिहास की ओर ध्यान नहीं देता, उसका कुछ ही दिनों में पतन हो जाता है। उसकी सभ्यता और संस्कृति का दिवाला निकल जाता है।

भारतीय वीराङ्गनाओं का संक्षिप्त चरित्र मय चित्रों के प्रकाशित करने की मेरी कई वर्षो से प्रवल इच्छा तो थी ही, 'कल्याण' के नारी विशेषाङ्क से और अधिक प्रेरणा मिली। उससे विशेष प्रेरित होकर मैंने एक पत्र कल्याण-सम्पादक श्रद्धेय भाई

हनुमानप्रसादजी पोद्दार की सेवा में भेजा। 'कल्याण' में प्रकाशित वीराङ्गनाओं के चरित्र मय चित्रों के पुस्तकाकार प्रकाशित करने की उनसे स्वीकृति मांगी थी। हर्ष का विषय है कि उन्होंने 'कल्याण' से वीराङ्गनाओं के चरित्र लेकर प्रकाशित करने की स्वीकृति तो अविलम्ब भेज दी, पर चित्रों के विषय में लिखा कि 'हम अपनी ब्लाकों से छापकर भेजने या छापने के लिए आपको ब्लाकें देने में असमर्थ हैं, क्योंकि हमारे यहाँ का ऐसा नियम नहीं है। आप चाहें तो हमारे प्रकाशित चित्रों से ब्लाकें बनवा सकते हैं।' उनकी इस महान् उदारता के लिए मैं उनका और 'कल्याण का चिराभारी हूँ। अन्य सहायक पुस्तकों के लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना भी अपना कर्तव्य समझता हूँ।

कुछ वीराङ्गनाओं के चरित्र मैंने स्वतन्त्र रूप से इसलिए लिखे हैं कि उनके परिचय की मुझे जो प्रमाणिक जानकारी प्राप्त हुई उनमें और पूर्व प्रकाशित घटनाओं में काफी अन्तर था। चित्र सब नये बनाये गये हैं।

महालचन्द बयेद

सम्पादक

हम तो जिय जानत हैं सबला
अबला की कहा इतनी करनी

दिल्ली के बाजार में हाडीरानी का विकराल युद्ध

[पृष्ठ—५]

हाडीरानी जसमाँदे

जोधपुर नरेश महाराजा यशवन्तसिंह (प्रथम) की रानी सीसोदनी थी या हाडी, इस विषय में इतिहासकारों के भिन्न मत हैं। 'वीर विनोद' में स्पष्ट लिखा है कि—ये रानी बून्दी की हाडी, राव शत्रुसाल की बेटी थी ; नाम जसमाँदे था।

हाडीरानी विख्यात वीराङ्गना थी। टेक और मर्यादा की मूर्ति थी। वह राजनीति में भी कुशल थी। फ्रेञ्च यात्री बर्नियर ने अपनी 'भारत यात्रा' पुस्तक में उसकी राजनीतिज्ञता, साहस और सतीत्व की बड़ी प्रशंसा की है।

महाराज यशवन्तसिह जब धर्मातपुर (फतैयाबाद) के युद्ध से विफल लौट आये तब रानी ने किले का मुख्यद्वार बन्द करवा दिया, महाराजा मय पांच सौ सवारों के बाहर ही खड़े रहे।

रानी ने अनशन कर दिया। सिर के केश उखाड़ लिये, आभूषण खोलकर चारों ओर फेंक दिये। भादों की वर्षा के सदृश उसके नेत्रों से आंसू बरस रहे थे। रानी पागल-सी हो गयी, उसकी क्रोधाग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। सखी सहेलियों का उपदेश तप्त-तवे पर जलविन्दु की भाँति बेकार गया, विलीन हो गया।

रानी कहने लगी—'मेरा पति युद्ध से भागकर नहीं आ सकता, यह कोई छलिया है। शीघ्र चिता तैयार करवाओ और मेरे सती होने का प्रबन्ध करो।'

रानी की माता मैके से बुलाई गयी। माता के बहुत समझाने-बुझाने पर कि 'महाराजा भागकर नहीं आये, वे घायल अवस्था में आये हैं। नयी सेना एकत्र कर वे फिर औरंगजेब से लड़ेंगे' तब रानी ने किले का द्वार खुलवाया। कुछ समयोपरांत महाराजा पुनः युद्ध में गये और पूर्ण विजय प्राप्त कर लौटे। रानी ने मुक्ताओं से थाल भर महाराज को वधाया और उनकी चरण वन्दना की।

पति के स्वर्ग-गमन के बाद जमरूद के थाने से वापस लौटकर रानी ने दिल्ली के बाजार में भयंकर युद्ध किया। पाँच हजार शाही सेना के मुकाबले, रानियों सहित कुल २५० राजपूत सेना ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया।

कवि की उक्ति है कि—हाडीरानी का विकराल युद्ध देखने के लिए स्वर्गस्थ विख्यात वीराङ्गना जवाहरबाई, कमला आदि सुराङ्गनाएँ विमान में बैठ कर आयीं। युद्ध देखकर जवाहरबाई के नेत्र, विकसित कमल की भाँति हर्ष से खिल उठे और कमला प्रसन्नता से ऐसी फूली कि उसकी कंचुकी के कसने टूट गये।

जबै नभ-मण्डल विमान सुर झूल गये,
फूल गये नैन नृप गांगा की लली के हैं।
जबै रण-भेरी इन देविन की बाजि गई,
भाजि गये लोक पुरवासी जे दिली के हैं।

जाई सत्रुसाल की रु व्याही जसवंत भूप,
खग ले बजाई भांति संजम बली के हैं
छूटि गये प्रबल गुमान मुगलानन के,
तूटि गये बन्ध कमला की कांचली के हैं ॥

रानियों की रण-पटुता, विलक्षण शस्त्र-परिचालन-कला देखकर यवनसैनिक आश्चर्यचकित रह गये। पराजित यवन-सैनिक मारे लज्जा के घर नहीं गये, कई ख्वाजा पीर गये, तो कई करबला गये।

सुराङ्गनाओं ने रानी पर इतनी पुष्प-वर्षा की कि स्वर्गलोक की मालिनियों के पारिजात फूल खलास हो गये। रानी की रण-कुशलता देख कर भूतिनियाँ जाति-अभिमान से प्रसन्न हो रही थीं और कह रही थीं कि 'तुम पुरुष लोग स्त्रियों को अबला कहते हो, क्या अब भी हम स्त्रियों को अबला कहोगे?'

कैसो युद्ध कीनो है निहारो इन देवियन,
कैसी तुम देखी याकी तेग की महा कला।
तुर्क रण छोरि घर गये ना शरम खाय,
केऊ गये ख्वाजा पीर केउ गे करबला।
धारि-धारि दाढ़ी मूंछ केऊ छुपि जान लागे,
डारि-डारि शस्त्रन अभागे भागे सबला।
भूतनीन भूतन सों कहें परिहास करि,
अबहू कहोगे का हमारी जाति अबला?

हाडीरानी ने ऐसा भयंकर युद्ध और शत्रु-संहार किया कि यवनों की लोथों से राजमार्ग पाट दिया। पावस ऋतु के वर्षा-कीच की भाँति बाजार में रक्त-कीच हो गया। शाही सेना के ५०० सैनिक मारे गये। अपूर्व वीरता दिखाकर हाडीरानी ने स्वर्ग-प्रयाण किया। वहाँ इनकी अगवानी के समय रम्भा, मैनका, प्रसिद्ध वीराङ्गना पद्मिनी, रानी करणवती—रावल समरसिंह की रानी, जो पानीपत के युद्ध में थी; हाडीरानी का भव्य स्वागत किया।

हाडी महारानी पतिलोक में पधारत ही,
बीरा ले रु आई रंभा कहिकें खमा-खमा।
सादर सनेह देवरानी अगवानी कीनी,
भारी लेय दौर परी मैनका झमा-झमा।
पद्मिनी मिलायो गरो गरे सों सुहृद भाव,
कधे पै जमायो हाथ नेह सों तहाँ उमा।
रानी कर्णवती अती प्रेम सों बिलोकि रही,
तोकि रही लहँगे की दावन तिलोत्तमा॥

महाराज यशवन्तसिंह जैसे प्रख्यात वीर थे, उनकी वीरपत्नी हाडीरानी उनसे कम नहीं थी। ऐसे ही वीरों के वीरत्व बल पर भारत भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है।*

---

* हाडीरानी का विस्तृत हाल 'दुर्गादास चरित्र' में पढ़ें।

वीराङ्गना रानीबाई

हिन्दू-जाति विश्व की आदिकालीन सभ्य जाति है। विश्व को सभ्यता की शिक्षा देने वाला देश हिन्दुस्तान ही है। चीन, सीरिया, अरब, रोम, यूनान की सभ्यता के राजप्रासाद की नींव इसी गौरवशाली देश ने, रक्खी थी। जब हम जलती चिताओं की लाल लपटोंका स्मरण करते हैं, उन में सर्वस्व स्वाहा कर देने वाली नारी-रत्नों की कहानी पढ़ते हैं, तो मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है, मातृत्व का सच्चा भाव हृदय में भर उठता है। जो देश अपनी नारियों की वीर-गाथाओं और आदर्श चरित्र के इतिहास की ओर ध्यान नहीं देता, वह कुछ ही दिनों में पतित हो जाता है। उसकी सभ्यता और संस्कृति का दीवाला निकल जाता है। यह हमारे परम सौभाग्य की बात है कि हम अपने नारियों के पवित्र और अनुपम चरित्र की पूजा करते हैं। जय-तक हिन्दू-जाति वीर नारियों के सतीत्व का बखान करती रहेगी, उसे दुनिया की वर्बर-से-वर्बर जाति भी मिटाने का दुस्साहस नहीं कर सकती। सती रानीबाई के चरित्र पर यदि सावधानी से विचार किया जाय, तो पता चलेगा कि वह मध्यकालीन भारत की पहली सती स्त्री थी, जिसने चिता में जलकर हिन्दूरमणियों के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया कि देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिये फूलों की सेज पर सोने वाली नारी, किस तरह अपना सर्वस्व अग्निदेव की पूजा में चढ़ा सकती है। रानीबाई

महाराज दाहिर की राजरानी थी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि दाहिर की राजपत्नी का नाम 'लाड़ी' था, लेकिन 'चाचनामा' का लेखक उसे रानीबाई लिखता है और दाहिर की राजमहिषी को इतिहास की दृष्टि से 'रानीबाई' कहना अधिक युक्तिसङ्गत दीखता है।

हिन्दुस्तान पर यवनों के आक्रमण आठवीं सदी से ही आरम्भ हो गये थे। तुर्कों के हमलों के बहुत पहले से ही हिन्दुस्तान तथा पश्चिमी यूरोप पर अरबों ने इस्लाम की पताका फहराने का प्रयत्न किया और यूरोप में तो वे कुछ अंश तक सफल भी रहे, लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी न चली। इतिहासकार लेनपूल लिखता है कि हिन्दुस्तान के इतिहास में अरबों का क्षणिक आधिपत्य एक कहानी और इस्लाम के इतिहास में एक असफल विजय थी, जिसका परिणाम स्थायी न रह सका। सन् ७१२ ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने बगदाद के खलीफा का आदेश पाकर हिन्दुस्तान पर हमला किया। देवल को उजाड़ कर उसने वीरान कर दिया, मन्दिर की पवित्रता नष्ट कर दी। उसके बाद नैरन पहुँचा, एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार करवा कर उसने सिंध नदी पार करने की योजना बनायी। राजा दाहिर ने उसका सामना करने के लिये सेना तैयार की। उसकी राजधानी आलोर नगर में थी, लेकिन वह रावार के दुर्ग से हमला करना उचित समझता था। वह अपने पुत्र जयसिंह और पत्नी रानीबाई को लेकर रावार के किले में चला गया। दाहिर और उसके 'ठाकुरों'

ने युद्ध किया। अलविलादरी का कहना है कि 'इतना वड़ा विकट

संग्राम इतिहास में और पहले कभी नहीं सुना गया था। दाहिर हाथी पर से उतर कर युद्ध करने लगा। लेकिन सायंकाल होते-होते मारा गया। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े।

जब रानी को पति की मृत्यु का समाचार मिला, तो उसका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उसने यवनों का अन्त कर देने के लिये म्यान से तलवार खींच ली। चाचनामा में लिखा है कि पंद्रह हजार सैनिकों को लेकर रानी ने यवनों को रौंदना आरम्भ कर दिया। भयङ्कर मार-काट होने लगी, लेकिन वह बहुत देर तक अरबों के सामने न ठहर सकी। रानी लड़ती जाती थी और वीर सैनिकों के हृदय में उत्साह भी भरती जाती थी कि 'वीरो! आगे बढ़ते चलो, धर्मद्रोहियों को इस पवित्र भारतभूमि से निकाल कर बाहर कर देना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है। गो-ब्राह्मण और आर्यधर्म की रक्षा करने से ही हम सभ्य राष्ट्रों के सामने अपनी उन्नतिशील सभ्यता और गौरवमयी संस्कृति का बखान कर सकेंगे।' पहले तो ऐसा लगता था कि राजपूत मैदान मार ले गये, लेकिन अन्त में किले पर अरबों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

राजमहिषी ने देखा कि किला दुश्मनों के हाथ में पड़ चुका है, उसे अन्तिम कर्तव्य स्थिर करने में कुछ भी देर न लगी। उसने किले की तमाम नारियों को सामने बुलाकर कहा कि 'गो-हत्यारों के हाथ में हमारी स्वाधीनता चली गयी है, हमें किसी भी हालत में उनकी दासता में नहीं रहना है। अपना सतीत्व

भङ्ग करा कर पराधीन जीवन बिताना हमारे लिये कभी भी शोभन नहीं है। हम लोगों के पति स्वर्ग में राह देखते होंगे और प्रतीक्षा करते होंगे। हमें वीर-नारियों की तरह अपना धर्ममूलक कर्तव्य पालन कर वहाँ शीघ्र ही चलना चाहिये।'

यह विवरण कपोलकल्पित नहीं है, चाचनामा के लेखक ने इसे वड़े लंबे-चौड़े रूप में दिया है। हिन्दू-रमणियों ने रानी को विश्वास दिलाया कि हम सब अग्निदेवता के हाथों में अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिये तैयार हैं।

एक बहुत विशाल अग्निकुण्ड तैयार कराया गया। रक्त वस्त्र पहन कर राजपत्नी जलती चिता में ईश्वर और धर्म को साक्षी दे कर कूद पड़ी। आग दहक रही थी। उसकी शिखाएँ आकाश से बातें कर रही थीं। ज्वालामयी आर्यविजय की प्रतिनिधि की तरह रानीवाई पति से मिलने स्वर्ग चली गयी। सैकड़ों स्त्रियों ने उसी तरह अपने-आपको होम कर रानी के सहगमन का आनन्द अनुभव किया।

आलोर और रावार दोनों नगर तेजस्विनी सती रानीबाई के स्वर्गगमन से श्मशान बन गये। वह मध्यकालीन भारतीय सतियों की पथ-प्रदर्शिका थी। वह आदर्श सती, वीर नारी, कुशल सेनासंचालिका और राजोचित गुणों से सम्पन्न राजरानी थी।

पन्ना धाय

माता के हृदय की कल्पना माता ही कर सकती है। चित्तौड़ ही नहीं, भारत और विश्व के इतिहास मे पन्ना धाय की चरित्र-गाथा एक विलक्षण-सी वस्तु है। उसने जिस तत्परता से गुलाब से भी कोमल मेवाड़ के राजकुमार उदयसिंह के प्राणों की रक्षा की, वह इतिहास की एक अमिट घटना है। राणा संग्राम-सिंह के स्वर्गवास के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर राणा विक्रमादित्य बैठा, लेकिन वह निकम्मा और अयोग्य था। थोड़े ही दिनों में वह शासन से अलग कर दिया गया और राणा सांगा का कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह वनवीर दासीपुत्र की संरक्षा में उत्तराधिकारी घोषित किया गया और पन्ना धाय की देख-रेख में रख दिया गया, क्योंकि उसकी अवस्था केवल छः साल की थी और उस की मा रानी करुणावती का स्वर्गवास हो चुका था। चित्तौड़ के इतिहास में यह समय अत्यन्त नाज़ुक था, बड़े-से-बड़े परिवर्तन की सम्भावना थी।

पन्ना धाय खींची जाति की राजपूत रमणी थी। उसका हृदय अत्यन्त विशाल था। एक दिन वनवीर ने निश्चय कर लिया कि रात आते ही वह उदयसिंह के खून से अपनी तलवार की प्यास बुझायेगा। काली रात आ गयी, चारों ओर अन्धकार छा गया। पन्ना को पता नहीं था कि, दुष्ट वनवीर ने राजकुमार

की हत्या करने की योजना बना ली है। राजकुमार रात का भोजन समाप्त कर बिस्तरे पर सो चुका था ; इतने में बारी आया जो नित्य पत्तल आदि हटाने के लिये आया करता था। बारी ने राजकुमार के कमरे में आते समय देख लिया था कि पापी और नमकहराम वनवीर की तलवार विक्रमादित्य के दो टुकड़े कर चुकी थी। उसके बदन का खून सूख गया। परन्तु उसने साहस से काम लिया। उसने पन्ना से सारी बातें बतला दीं। पन्ना उदयसिंह को अपने बच्चे से भी अधिक प्यार करती थी। पन्ना अपने पुत्र चन्दन और मेवाड़ के उत्तराधिकारी उदयसिंह को छाती से चिपका कर सोयी हुई थी। उसकी आँखों में स्नेह की धारा फूट रही थी। उसके अधरों पर वात्सल्य का रस उमड़ रहा था। वह चौंक उठी। ऐसे अवसरों पर भारतीय स्त्रियाँ अपना कर्तव्य स्थिर करने में बड़ी चतुर और कुशल होती हैं। उसकी समझ में यह बात आ गयी कि दुष्ट खूनी इस कमरे में भी आयेगा और अबोध तथा निरीह बालक का वध कर अपनी पापमयी इच्छा पूरी करेगा। उसने बारी से कहा कि 'मैं प्यारे उदय को इस तरह मरते कभी नहीं देख सकती।'

उसने उदय के गाल चूम कर उसे फल के टोकरे में रख कर पत्तों से ढक दिया और बारी से कहा कि 'तुम इसे लेकर बेरिस नदी के तट पर मेरी प्रतीक्षा करना। बारी टोकरी में सोये हुए मेवाड़ के वैभव को लेकर किले के बाहर चला गया। उसके बाद वीरहृदया पन्ना ने जो कुछ भी किया, उसका उदाहरण

विश्व के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। अपने कलेजे के

टुकड़े चन्दन को सेज पर सुला कर वह वनवीर की राह देखने लगी। अपने भावी राजा और सौंपी हुई थाती की रक्षा के लिये उस वीर-माता ने अपनी सन्तान को ही मृत्यु की वेदी पर चढ़ा दिया। उसका चेहरा स्वाभिमान से चमक रहा था, वह तो उदयसिंह की ही जीवन-रक्षा में अपना और मेवाड़ दोनों का सौभाग्य समझती थी। दुष्ट हत्यारा आ पहुँचा। वह बोला, 'उदय कहाँ है ?' पन्ना सम्हल कर दूर खड़ी हो गयी। उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला, अँगुलियों से उसने चन्दन की ओर संकेत किया ; तलवार गिरी, बालक के मुख से एक चीख निकली। पन्ना की आँखों से एक बूँद भी जल नहीं गिरा, परन्तु पुत्र-स्नेह से उसका हृदय भीतर-ही-भीतर फटा जा रहा था। वह शक्ति थी, शक्ति अत्याचारों से कभी नहीं डरती और न पराजित ही होती है। वनवीर चला गया।

पन्ना, अपने प्यारे पुत्र का अन्तिमसंस्कार करके चुपचाप किले से बाहर निकल गयी। चितौड़ की पश्चिम ओर बेरिस नदी के जनशून्य किनारे पर बारी राजकुमार उदयसिंह को लिए हुए बैठा था। पन्ना वहाँ से राजकुमार को साथ लेकर वीर बाघजी के पुत्र सिंहराव के पास जाकर रहने की प्रार्थना की ; वनवीर के भय से उसने राजकुमार की रक्षा करना स्वीकार न किया। तदनन्तर उसने डूंगरपुर के रावल एशाकर्ण (यशाकर्ण) के पास राजकुमार को रखना चाहा, किन्तु उसने भी भय के मारे राजकुमार को नहीं रक्खा। तदुपरान्त विश्वासी और हितकारी

भीलों के द्वारा रक्षित हो, अरावली के दुर्गम पहाड़ और ईडर के कूटमार्गों को लाँघ कर कुमार को साथ लिए हुए पन्ना धाय कमलमेर दुर्ग में पहुँची। दीप्रा के वणिककुल में उत्पन्न आशाशाह नामक एक जैन राजपूत उस समय कमलमेर में राज करता था। पन्ना ने बालक राजकुमार को आशाशाह की गोद मे रखकर नम्रता से कहा—'अपने राजा के प्राण बचाइए' परन्तु आशाशाह ने अप्रसन्न और भीत होकर कुमार को गोद से उतारना चाहा। किन्तु आशाशाह की माता ने पुत्र की ऐसी कायरता देख कर उसको फटकार और उपदेशपूर्ण वाक्यों से कहा—'स्वामी का हितचिन्तक, किसी समय विपत्ति या विघ्न से नहीं डरता। राणा संग्रामसिंह का राजकुमार तुम्हारा स्वामी है; विपत्ति में पड़ कर आज तुम्हारा आश्रय चाहता है, इसको आश्रय देने से भगवान के आशीर्वाद से तुम्हारे गौरव की वृद्धि होगी' माता की नीतिपूर्ण शिक्षा से आशाशाह ने कुमार को रखना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

कुछ दिनों के बाद बनवीर इस समाचार से दंग हो उठा कि उदयसिंह जीवित है। बनवीर को अपने पापकर्मों का दण्ड मिला। पन्ना जीवित थी। उसने उदयसिंह का राज्याभिषेक देख कर अपने आपको धन्य माना। राणा उदयसिंह उसके पवित्र चरणों की धूलि सिर पर चढ़ा कर आनन्दित हो उठे।

पन्ना अपने आदर्श त्याग से अमर हो गयी।

———

वीराङ्गना वीरमती

भारतीय नारियों ने अपने सतीत्व और पातिव्रत्य की रक्षा के लिये जलती चिताओं में अपने-आपको समर्पण कर जिस प्रण-पालन का परिचय मध्यकाल में दिया, जिस वीरता और उत्साह से उन्होंने म्लेच्छों के पापी हाथों में पड़ने से अपने-आपको बचाया, उन सब बातों का विवरण अन्य देशों के इतिहास में नाममात्र को ही मिलता है। विश्व का मध्यकाल वीरता का स्वर्णयुग समझा जा सकता है ; इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि में भी इस समय वीरों (नाइटों) की गुणगाथाएँ बड़े चाव से गायी जा रही थीं!

चौदहवीं सदी में भारत का सम्राट् अलाउद्दीन था। इतिहास साक्षी है कि वह हिन्दुओं को नष्ट करने, उनकी बहु-बेटियों की इज्जत लेने, और उनका राज्य हड़प लेने के लिये किस तरह तुला बैठा था ; लेकिन चित्तौड़ में रानी पद्मिनी ने अँगूठा दिखा दिया, वह चिता में जलकर राख हो गयी, सम्राट् की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। चितौड़ की ही तरह देवगिरि राज्य अपना सिर उन्नत किये हुए था। उस छोटे-से राज्य ने द्वितीय सिकन्दर बनने का स्वप्न देखनेवाले यवन बादशाह अलाउद्दीन से साफ-साफ कह दिया कि देवगिरि अपनी स्वाधीनता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये खून पानी की तरह

वहा देगा। देवगिरि का राजा रामदेव अपने मराठा सरदार के वल पर कूदता था। यवनों की मजाल नहीं थी कि वे उस मराठा सरदार के जीते-जी देवगिरि पर हमला वोल दें। इस सरदार की एक रूपवती कन्या 'वीरमती' थी। वीरमती की माता इस असार-संसार से वहुत पहले ही कूच कर चुकी थी। उसका पिता भी एक युद्ध में वीरता के सच्चे जौहर प्रकट करता हुआ चल वसा। वह अनाथ हो गयी, लेकिन राजा रामदेव उसे अनाथ की हालत में कैसे रख सकते थे? राजा ने उसको राजमहल में वुला लिया और सगी लड़की की तरह जानने-मानने लगे। राजा की लड़की गौरी उसे पा कर अत्यन्त प्रसन्न हुई, दोनों एक दूसरी की छाया की तरह साथ रहती थीं। कुछ दिनों के वाद राजा ने वीरमती की सगाई एक मराठा युवक कृष्णराव से कर दी, जो वड़ा वीर था और जिसकी वीरता की कहानियां वीरमती भी सुन चुकी थी। लेकिन वह स्वभाव का कपटी था।

देवगिरि पर अलाउद्दीन ने आक्रमण कर दिया। राजा रामदेव यवनों का लोहा मानने के लिये कभी तैयार नहीं था। देवगिरि से राजा के सेनापतित्व में मतवाले वीर सैनिकों की टोली, जिन में कृष्णराव भी था, यवनों को सीमा से वाहर निकाल देने के लिये चल पड़ी। वीरमती ने चलते समय कृष्णराव से कहा था, 'प्रियतम! रणभूमि ही वीरों के आराम करने का स्थान है, यदि मुझे चाहते हो तो पहले रणभूमि को

ही प्यार करो। स्वाधीनता के लिये मर-मिटना ही क्षत्रिय का धर्म है।' दोनों सेनाओं के आमने-सामने होते ही भयङ्कर मार काट मच गयी। हिन्दू-सैनिक यवनों को गाजर-मूली की तरह काटते हुए अपना जौहर दिखाने लगे। अलाउद्दीन के दाँत खट्टे हो गये, वह मैदान छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। लेकिन यह उसकी चाल थी, हिन्दुओं को धोखे में डाल कर उसने उन पर आक्रमण करने का विचार किया। उसने अपनी सेना सुसज्जित कर फिर हमला किया। राजा आश्चर्य में पड़ गया। हिन्दू-वीरों ने सिंह की तरह अट्टहास करते हुए कहा, 'हम लड़ेंगे।' लेकिन कृष्णराव ने कहा कि 'कूटनीति से काम लेना चाहिए।' उसने कहा कि पहले यह पता लगा लेना उचित होगा कि शत्रु की सेना कितनी है तथा रसद कितनी मात्रा में है। राजा के कहने पर वह स्वयं जाने के लिये तैयार हो गया, चारों ओर लोग उसकी 'वाह-वाह' करने लगे। लेकिन वह कपटी था, नमक-हराम था ; उसीके कहने से अलाउद्दीन ने लड़ाई का मैदान छोड़ दिया था, वह उसे घरका भेद बताने जा रहा था।

वीरमतीरूपी शक्ति की प्रखर किरणों ने कपट की छाती छेद डाली। उसने अपने भावी पति से कहा कि 'दुश्मन की सेना असंख्य है ; मैं नहीं चाहती कि आप जीते-जी दुश्मन के हाथों बन्दी हों। यद्यपि मेरा अभीतक विवाह नहीं हुआ है, फिर भी हम दोनों कर्तव्यसूत्र में बँध गये हैं।' उसकी प्रार्थना बेकार गयी। कृष्णराव अकेला ही गया, इस से वीरमती को

कुछ सन्देह हुआ और वह भी मर्दाने वेश में उसके पीछे-पीछे

चल पड़ी। कुछ दूर जाने पर वीरमती का घोड़ा रुक गया ; उसने देखा—एक झाड़ी में छिप कर अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति कृष्णराव से भेद ले रहा है। अब तो उस सिंहिनी के शरीर में आग लग गयी, उसने झपट कर कृष्णराव की छाती में नंगी तलवार भोंक दी। यवन सेनापति भाग गया। कृष्ण-राव ने आँखें खोल कर कहा 'प्रिये वीरमती !' उस पापी के मुख से 'प्रिये' शब्द सुन कर वीरमती ने कहा कि 'तुम्हारी प्रिया तुम्हारा पाप और अन्याय है।' कृष्णराव का हृदय पश्चात्ताप से भर गया। उसने कहा, 'सचमुच मैं पापी हूँ।' वीरमती ने कहा कि 'जो वीरमती धर्म को जानती है, वह अपना कर्तव्य भी समझती है ; बिना आपके मेरा संसार सूना ही है।' यों कहते हुए उसने अपनी छाती में भी तलवार भोंक ली। दोनों एक साथ अनन्त की गोद में सो गये।

सती मयणल्ल देवी

सातवीं सदी में चालुक्यों की सार्वभौम राजसत्ता सारे दक्षिणभारत पर स्थापित हो गयी थी। पुलकेशी द्वितीय और महाराज हर्षवर्धन में 'भारत का सम्राट्' पद पाने के लिये प्रति-द्वन्द्विता चला करती थी। ग्यारहवीं सदी में चालुक्य राजा

भीम गुजरात में राज करता था। वह महारानी उदयमती को प्राण से भी बढ़ कर चाहता था। उदयमती के पुत्र का नाम कर्ण था। कर्ण की मातृभक्ति इतनी प्रसिद्ध थी कि लोग महाभारत के कर्ण का स्मरण कर उसे अभिनव कर्ण कहा करते थे। कर्ण सन् १०२२ ई० में गद्दी पर बैठा। उसकी राजमहिषी का नाम मयणल्ल देवी था, जिसने सौजन्य और पातिव्रत-धर्म से राजा को अपने वश में कर लिया।

मयणल्ल देवी चन्द्रपुर के राजा की कन्या थी। वह चालुक्य-नरेश की वीरता पर मुग्ध थी। राजा अत्यन्त सुन्दर भी था। राजकन्या ने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं कर्ण से ही विवाह करूँगी, अन्यथा कुमारी रहूँगी। मयणल्ल कुछ-कुछ कुरूपा और मोटी थी। उसके पिता रात-दिन उसके विवाह के लिये चिन्तित रहा करते थे। परन्तु उपाय निकल ही आया।

एक बार कर्ण की राजसभा में एक चित्रकार ने कादम्बराज जयकेशी की कन्या का चित्र दिखाया और कहा कि इसका नाम मयणल्ल है। उसने कहा 'यह आप के साथ विवाह करना चाहती है। इसने आपके लिये एक हाथी भेजा है।'

राजा मन्त्रियों के साथ हाथी देखने के लिये बाहर आया, परन्तु वह आश्चर्यचकित हो उठा। हाथी पर मयणल्ल स्वयं बैठी थी। राजा ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया।

राजकुमारी ने सादर अभिवादन कर कहा, 'आर्यकन्या जिसे एक बार अपना पति चुन लेती है, वही उसके जीवन का सहारा

हो जाता है। यौवन, सौन्दर्य आदि तो संसार की मानी हुई वस्तुएँ हैं। जब मानव संन्यास-पथ पर यात्रा करता है तो वह सुन्दरी-से-सुन्दरी प्रियतमा को माता कह कर ही सांसारिक बन्धन तोड़ता है। यदि आप विवाह न करेंगे तो मैं संसार में जीवन धारण करना तक तुच्छ समझती हूँ। जब मैंने हृदय-सिंहासन पर आपको बैठा लिया है तो दूसरे का सपने में भी खयाल करना महापाप है।'

इन बातों से राजा का मन प्रभावित न हो सका। अन्त में उस राजबाला ने अपनी आठ सहेलियों के साथ चिता में जलकर सती होने में ही अपने व्रत-पालन का सुगम मार्ग देखा।

एक बहुत बड़ी चिता तैयार की गयी। मयणल्ल चिता में प्रवेश करने वाली ही थी कि कर्ण की राजमाता उदयमती ने गुण-ग्राहकता और वास्तविक मातृत्व का परिचय दिया। उसने कर्ण को समझाया कि 'सौन्दर्य और रूप से अधिक मूल्यवान् हृदय होता है। सुन्दर हृदय ही असली सौन्दर्य है। मयणल्ल का हृदय पातिव्रत-धर्म से अत्यन्त शुद्ध हो चुका है। उसका तिरस्कार करना या उसे निराश करना सर्वथा अनुचित है। यदि तुम विवाह न करोगे तो मैं स्वयं चिता में जल कर प्राण दे दूँगी।'

कर्ण का पत्थर-हृदय माता के कठोर व्रत से पिघल उठा। राजकुमारी का विवाह हो गया। मयणल्ल ने अपने सुन्दर और सुशील स्वभाव से कर्ण को अपने वश में कर लिया। राज-मन्त्री मुञ्जाल की सहायता से उसने राज्यप्रबन्ध में भी काफी योग

दिया। मयणल्ल को कालान्तर में सिद्धराज नामक पुत्र-रत्न प्राप्त

हुआ। चालुक्यों की मान-प्रतिष्ठा और गौरव बढ़ाने में कुमार सिद्धराज का बहुत बड़ा हाथ था। मयणल्ल ने उसे बचपन से ही राजोचित गुणों से अलंकृत करना आरम्भ कर दिया था। मयणल्ल के मातृत्व ने आगे चल कर सिद्धराज को महाराजाधिराज बना दिया।

मयणल्ल का नाम चालुक्यों के इतिहास में अमर है। उसने आदर्श पातिव्रत का पालन किया। वह मातृत्व, पातिव्रत और सतीत्व की प्रतीक थी।

वीराङ्गना किरणदेवी

अपने सतीत्व और पातिव्रत-धर्म की रक्षा करना ही भारतीय स्त्रियों के जीवन का अनुपम और पवित्र आदर्श रहा है। उनके सतीत्व के वज्राघात से बड़े-बड़े साम्राज्यों की नींव हिल उठी, राजमुकुट धूलि में लोटने लगे, मानव-वेषधारी दानवों की दानवता और व्यभिचारमूलक अत्याचार का अन्त हो गया। किरणवती या राजरानी किरणदेवी मेवाड़-सूर्य महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह की कन्या थी; उसका विवाह बीकानेर नरेश के भाई उन महाराज पृथ्वीराज से हुआ था जिनकी कविता ने राणा प्रताप में पुनः रजपूती का जोश ला दिया था और फिर

उन्होंने किसी भी हालत में अकबर से सन्धि की बातचीत नहीं की थी।

अकबर की विषैली राजनीति के क्लोरोफार्म से मतवाले हो कर बड़े-बड़े राजपूत-घरानों ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा और मान-सम्मान की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया था, मेवाड़ को छोड़ कर अन्य राजपूत-रियासतों ने अकबर का लोहा मान लिया था। पृथ्वीराज अपनी इस वीर रानी के साथ दिल्ली में ही रहते थे। किरणदेवी परम सुन्दरी और सुशीला थी। अकबर उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता था। वह शक्तिशाली सम्राट् अवश्य था, किन्तु कामाग्नि भी उसके हृदय में रात-दिन धधका करती थी। दिल्ली के शक्तिशाली सम्राट् की अभिलाषाओं की पूर्ति में बाधक होने के लिये काफी शक्ति और साधनसम्पन्नता की आवश्यकता थी।

अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिये ही अकबर हर-साल दिल्ली में 'नौरोज' का मेला लगवाता था। राजपूतों की तथा दिल्ली की अन्य स्त्रियाँ इस मेले के बाजार में जाया करती थीं। पुरुषों को मेले में जाने की आज्ञा नहीं थी। अकबर स्त्री-वेष में इस मेले में घूमा करता था। जिस सुन्दरी पर अकबर मुग्ध हो जाता था, उसे उसकी कुट्टिनियाँ फँसा कर उसके राजमहल में ले जाती थीं।

अकबर की आँखें बहुत दिनों से किरणदेवी पर लगी हुई थीं। उसे सीसोदिया राजघराने की सिंहनी की वीरता का पता

नहीं था। वह नही जानता था कि भारतीय नारियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अपने प्राणों तक का चिता में जल-जल कर बलिदान कर दिया है। महारानी पद्मिनी की चिता की जलती राख का दर्शन उसकी पापी आँखों ने नहीं किया था।

एक दिन जब 'नौरोज' के मेले में मीनाबाजार की सजावट देखने के लिये किरणदेवी आयी तो कुट्टिनियों ने अकबर के संकेत से उस पतिव्रता को धोखे से जनाने महल पर पहुँचा दिया। विषयान्ध पामर अकबर ने उसे घेर लिया और नाना प्रकार के प्रलोभन दिये। किरणदेवी की तेजस्विता की प्रखर किरणों से अकबर की कामवासना भभकती जा रही थी। ज्यों ही उसने उस राजपूत रमणी का अङ्ग स्पर्श करने के लिये हाथ हिलाया, त्यों ही उस रणचण्डी ने कमर से तेज कटार निकाली और शुम्भ-निशुम्भ की तरह उसे धरती पर पटक कर छाती पर पैर रख कर कहा—'नीच! नराधम! भारत का सम्राट् होते हुए भी तू ने इतना बड़ा पाप करने की कुचेष्टा की! भगवान् ने सती-साध्वियों की रक्षा के लिये तुझे बादशाह बनाया है और तू उन पर बलात्कार करता है? दुष्ट! अधम! तू बादशाह नहीं, नीच विषयी कुत्ता है, पिशाच है। तुझे पता नहीं है कि मैं किस कुल की कन्या हूँ। सारा भारत तेरे पाँवों पर सिर झुकाता है; परन्तु मेवाड़ का सीसोदिया-वंश अभी अपना सिर ऊँचा किये खड़ा है। मैं उसी पवित्र राजवंश की कन्या हूँ। मेरी धमनियों में बाप्पा रावल और साँगा का रक्त है। मेरे अंग-अंग में पावन

क्षत्रिय वीराङ्गनाओं के चरित्र की पवित्रता है। मेरा हृदय

पूजनीया सती पद्मिनी के जौहर की अग्नि-शिखाओं से आलोकित है। तू बचना चाहता है तो मन में सच्चा पश्चात्ताप करके अपनी माता की शपथ खाकर प्रतिज्ञा कर कि अब से 'नौरोज' का मेला नहीं होगा और किसी भी नारी की आबरू पर तू मन नहीं चलावेगा। नहीं तो, आज इसी तेज धार कटार से तेरा काम तमाम करती हूँ।'

सिंहनी-सी झपट, दपट चढ़ी छाती पर,
मानो शठ दानव पै दुर्गा तेजधारी है।
गर्ज कर बोली दुष्ट! मीना के बजार मिस,
छीना अबलाओं का सतीत्व दुराचारी है।
अकबर! आज राजपूतानी के पाले पड़ा,
पाजी चालबाजी सब भूलती तिहारी है।
कर ले खुदा को याद भेजती यमालय को,
देख! यह प्यासी तेरे खून की कटारी है॥

अकबर के शरीर का खून सूख गया। पानीपत, मालवा, गुजरात और खानदेश के सेनानायक के दोनों हाथ थरथर काँपने लगे। उसने करुणस्वर में बड़ा पश्चात्ताप करते हुए हाथ जोड़ कर कहा, 'मा! क्षमा कर दो, मेरे प्राण तुम्हारे हाथों में हैं, पुत्र प्राणों की भीख चाहता है।' उसने प्रण किया कि 'अब नौरोज का मेला कभी न लगेगा।' दयामयी आर्यदेवी ने अकबर को प्राणों की भीख दे दी!

इस तरह तेजस्विनी और पतिव्रता राजपूतरमणी ने यवन के हाथों से अपने सतीत्व की रक्षा की। नौरोज का मेला और मीनाबाजार अकबर के चरित्र के बड़े कलङ्क हैं, जिन्हें इतिहास-कार कभी नहीं भूल सकते।

किरणदेवी सतीत्व की प्रखर किरण थी, जिसके आलोक ने सारे देश को पातिव्रत्य की आभा से जगमगा दिया।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि किरणदेवी का नाम जयावती (या जोशीबाई) था। नाम कुछ भी हो, काम से ही लोगों की प्रसिद्धि होती है। इतना तो है ही कि बीकानेर नरेश पृथ्वीराज की राजरानी के पातिव्रत-धर्म ने दुराचारी अकबर को विवश किया कि वह उसे 'मा' कहे। इतिहास ने दिखला दिया कि अबला कहलाने वाली नारी कितनी बलवती होती है।

चारुमती

औरंगजेब की अनीति और उसका अत्याचार जगत्प्रसिद्ध है। उसने अपने पूज्य पिता शाहजहाँ को कैद किया, अपने भ्राता दारा को मरवा डाला और मुराद को कैद कर लिया था। ये घटनाएँ कल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। जब अपने पूज्यजनों के प्रति उसका ऐसा घृणित-व्यवहार था तब दूसरों के साथ कैसा भला व्यवहार हो सकता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

चारुमती रूपनगर (वर्तमान नाम किशनगढ़) के राजा रूपसिंह की कन्या थी। उसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों ओर फैली हुई थी। वह धार्मिक वृत्ति की लड़की थी। नित्य गीता का पाठ किया करती थी और अपने हाथ का बनाया हुआ भोजन करती थी।

औरंगजेब ने जब जन-जन के मुख से चारुमती के रूप गुणों की प्रशंसा सुनी तो उसके साथ विवाह करने की इच्छा हुई। उसने चारुमती के भाई मानसिंह से कहा कि 'मैं तुम्हारी बहिन चारुमती के साथ विवाह करूँगा। तुम अपने घर जाकर विवाह की तय्यारी करो, मैं बारात लेकर लग्न पर पहुँच जाऊँगा।' मानसिंह सुन कर चकित रह गया। मदद पाने की आशा से वह जयपुर और जोधपुर नरेशों के मुँह की ओर ताकने लगा। किन्तु जो स्वयं मुगल-सम्राट् के साथ रिश्ता जोड़ चुके थे, भला वे क्या सहायता कर सकते थे। चापलूस राजाओं ने इशारा किया कि स्वीकार कर लो। अतः इच्छा न रहते हुए भी मजबूरन उसे स्वीकार कर लेना पड़ा।

मानसिंह अपने घर आया। जिस प्रकार महाजन (वणिक) जहाज डूब जाने पर व्यथित-हृदय होकर घर लौटता है उसी प्रकार पीड़ित-हृदय मानसिंह ने घर में प्रवेश किया। उसने बात प्रच्छन्न रखने की भरसक चेष्टा की, किन्तु जो गुप्त रह सकनेवाली बात नहीं ; वह कैसे गुप्त रह सकती थी। जल में तेल-विन्दु की भाँति वह सारे शहर में फैल गयी।

चारुमती की एक दासी किसी कार्य वश बाजार गयी, वहाँ वणिकों ने उससे कहा—तुम तो राजकुमारी के साथ दिल्ली जाओगी, हम लोगों को भूल मत जाना।

दासी बड़ी समझदार थी, वह तथ्य को समझ गयी। वह दौड़ी हुई राजकुमारी के पास आई और उन्हें उक्त सूचना दी। राजकुमारी सुनते ही सहम गई। वह इष्टदेवों को मनाने लगी, उनसे प्रार्थना करने लगी। उसकी विकलता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, यहाँ तक बढ़ी कि वह मूर्च्छित हो गयी। परिचारिकाएं चन्दन लेप, गुलाब जल और पंखे की बातास इत्यादि नानाप्रकार के उपचार करने लगीं। पुत्री के चेतनाशून्य होने की सूचना पाकर माता दौड़कर आयी। पुत्री को अपनी गोद में लेटाकर अपनी साड़ी से उसका स्वेद पोंछने लगी। थोड़ी देर बाद राजकुमारी की मूर्छा टूटी, उसने अपने चाचा रामसिंह को बुला देने के लिए कहा। उनके आने पर राजकुमारी उनसे कहने लगी—'चाचाजी! मुझे जन्मते ही क्यों नहीं मार डाली? रख कर आपने कौनसा उच्च पद प्राप्त किया? आखिर तो मैं अब मरूंहीगी। मैं जीते-जी बादशाह से विवाह हर्गिज नहीं करूँगी। आप मेरे स्वभाव प्रकृति से पूर्ण परिचित है, आपने मानसिंह को क्यों नहीं मना किया। तुम लोग किस मुँह से क्षत्री कहलाते हो और कौन मुख लेकर आर्य। हे विधाता। तैंने जन्म ही दिया, तो सीसोदियों के घर क्यों नहीं दिया।' नत-मस्तक होकर रामसिंह चारुमती के तीक्ष्ण वचन सुनता रहा।

चारुमती ने कहा, 'चाचाजी आप इस प्रकार भयभीत मत होइये, अब भी कुछ उपाय बताइये।'

रामसिंह ने कहा--'बेटी! मैं तुझे एक सर्वोत्तम उपाय बताता हूँ—मेरे कहने से तू महाराणा राजसिंह को एक विनययुक्त मर्मस्पर्शी पत्र लिख। बेटी! आजका दिन लज्जा शर्म्म का नहीं है।' चाचा की मनोज्ञ सत्परामर्श सुन कर राजकुमारी को पूर्ण सन्तोष हुआ। जैसे आंधे को आँख मिलने से, घाम-श्रमित को गहरी छाया मिलने से, ज्येष्ठ-पिपासित को अमृत प्राप्ति से, जले हुए पर चन्दन लेप से और क्लान्त-पथिक को रथ की सवारी मिलने से बेहद खुशी होती है, वैसे ही चाचाजी की युक्ति से चारुमती को खुशी हुई। रामसिंह की आज्ञा से राजकुमारी ने हिन्दू-कुल-दिवाकर महाराणा राजसिंह को पत्र लिखा।

भावी प्राणेश्वर!

स्वस्ती श्री उदयपुर हिन्दुओं का तीर्थ। आपको कौनसी उपमा लिखूँ? उपमा योग्य शब्द मेरे पास नहीं है। धर्म-धुरा के धारक, हिन्दू-सूर्य, परमोपकारी महाराणा! सिवा आपके चरणों के मेरा और कोई बल नहीं है। मैं अपरिचित दासी आपको प्रणाम लिख रही हूँ यह है तो निर्लज्जता ही, किन्तु क्या करूँ मुझे चैन नहीं है। आप दीनदयालु हैं, दानी हैं, दयासिन्धु हैं। मैं आपकी सदैव कुशल कामना करती हूँ, पर मेरी कुशल नहीं है। मेरे भाई है, कुटुम्बी है, निकट सम्बन्धी है; किन्तु कोई भी तनिक सहायता नहीं कर सकता। मुझे जबरन विवाहने के

लिए औरंगजेब चला आ रहा है, लाखों सुभटों की सेना उनके

साथ है। सर्व भाँति से मैं निर्बल होकर निराश हो गयी हूं। धर्म बचाने की एक आप ही की आशा है। मैं अधिक अभागिनी हूँ, अनाथिनी हूँ, मेरे पर यह अकस्मात् गजब ढह पड़ा है।

नाथ! उनसे मैं विवाह कैसे करूँ? मैं तो इन यवनों का मुँह तक नहीं देखती। वैष्णव धर्मानुसार छुआछूत वाली मैं शाही जनान खाने में कैसे विचरन करूँगी? यदि आप दासी की अवहेलना करेंगे, तो मैं पातिव्रत पालन कर भव-समुद्र को तरूंगी—उदयपुर की चितेरिन का दिया हुआ आपका चित्र, हृदय में लगाकर मैं चिता में जल जाऊँगी।

जहाज पर के पक्षी को जहाज के सिवा अन्य स्थान कहीं दिखाई नहीं देता। मुक्ति अभिलाषी के लिये ईश्वर के सिवा अन्य स्थान नहीं। नाथ! यदि कान देकर मेरी करुण पुकार आप नहीं सुनेंगे, तो सुनाने के सिवा मेरा और कोई जोर नहीं है। महाराणा प्रताप के प्रपौत्र! मेरी जैसी अभागिनी के लिए आपके चरणों के सिवा अन्य कोई अवलम्ब नहीं है।

दिल्ली की अधीश्वरी कहलाने पर लाय लगो, मैं तो आप की पटरानी की चरण-रज होकर रहूँगी। मैं जोधाबाई की तरह राजकार्य नहीं चाहती। नाथ! मैं तो परिवार की चाकरी करूँगी। मैं जरदा (एक प्रकार का शाही मिष्टान्न) युक्त थालकी इच्छुक नहीं हूँ, मैं तो आपके उच्छिष्ट टुकड़े खाकर रहूँगी। मलका कहलाने पर वज्रपात क्यों न हो, मैं तो आपकी क्षुद्र-दासी कहलाऊँगी।

बैठूँ, फिरूँ या भूमि पर पड़ूँ तो मेरे मन को क्षण मात्र भी चैन नहीं मिलता। केवल आप ही का नाम और आप ही की गुण-गाथाएँ सुनने की इच्छा रहती है। सखियों की अन्य बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। औरंगजेब के आने की बात जब याद आती है, तब वेदना हृदय में नहीं समाती। दासी के दोनों नेत्र झर रहे हैं, तरस रहे हैं। बिना आपके दर्शणों के दुष्टा निद्रा भी नहीं आती।

मैं निरन्तर इसी अभिलापा में उत्सुक रहती हूँ कि जनानी ड्योढ़ी में जाकर मैं कब मस्तक नमाऊँगी, कब मैंके में कङ्कण खुलाऊँगी, कब पूज्य सासुओं के पवित्र पाँव दबाऊँगी और बापवंशियों का जो सदा से पवित्र स्थान है, उस राण-रणवास में कब प्रवेश करूँगी।

जैसे किसी के घर में लाय लगी हो और उसके पास न तो जल हो, न किसी के मदद की उसे आशा ही हो, वैसे ही मेरे भाई के पास न तो सेना है, न शक्ति है और औरंगजेब के भय से न घर में मेरा कोई सहायक ही है। ऐसी दशा में मेरा जीवन और मरन केवल आपके पत्र पर निर्भर है।

कपिला गाय, कसाई के हाथ जा रही है। औरंगजेब मन चाहा कर रहा है। किन्तु नाथ! मैं तो आपको पति मान चुकी हूँ। कुल-कानि रख कर जीऊँ या मरूँ, किन्तु रानी आपकी कहलाऊँगी। इस अनाथ गरीबिनी का प्रण और धर्म निभाना आपके हाथ है।

पीढ़ियों से आप शरणागत-वत्सल रहे हैं। इसलिए चारुमती की लाज आपके हाथ है।

दर्शनाभिलाषिणी—
चारुमती

उपर्युक्त पत्रपढ़ कर महाराणा राजसिंह ने अपने मंत्री, सेनापति, पटरानी और वृद्ध राजकवि की सम्मतियाँ ली, तो सबों की सर्वसम्मत राय मिली कि शीघ्रातिशीघ्र चारुमती के साथ विवाह करके उसका उद्धार करना चाहिए। सलूंबर के रावत रत्नसिंह ने यह भार अपने ऊपर लिया कि चारुमती को लेकर आप सकुशल उदयपुर लौट आवेंगे तब तक मैं औरंग का. मार्ग अवरुद्ध कर दूँगा।

महाराणा राजसिंह ने विवाह का निश्चय करके चारुमती को स्वीकृति-पत्र भेज दिया।

सर्वसम्मत राय के अनुसार महाराणा राजसिंह अविलम्ब बारात लेकर रूपनगर पहुँच गये। स्वयंवर रचकर विधि-पूर्वक विवाह कर चारुमती को उदयपुर ले आये। विवाह के लिए इकट्ठा किया हुआ औरंगजेब का सारा सामान धरा ही रहा और वह शिशुपाल की तरह मुँह ताकते रह गया।*

---

* चारुमती का विस्तृत विवरण 'राजसिंह चरित्र' में पढ़िये।

वीराङ्गना ताराबाई

ताराबाई नाम की कई सती-साध्वी स्त्रियाँ भारतीय इतिहास में ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं।

टोंक एक रियासत है। पहले वहाँ राव सुरनाथ का आधिपत्य था। सोलहवीं सदी में यवनों के कपटपूर्ण अत्याचार के कारण उन्हें यह प्रदेश छोड़ देना पड़ा। वे अरावली पहाड़ की तलहटी में एक छोटा-सा प्रदेश बसाकर रहने लगे। चरित्रनायिका ताराबाई उन्हीं की वीर पुत्री थी, राव सुरनाथ के कोई और सन्तान न थी। तारा की मा का बहुत पहले ही देहान्त हो चुका था, उसकी शिक्षा का भार राव सुरनाथ पर ही पड़ा। वह स्वयं एक वीर पुरुप था, उसने सन्तान को भी वीर बनाना चाहा; यही कारण था कि थोड़े ही दिनों में तारा ने घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना, भाला मारना आदि भली प्रकार सीख लिये। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी, वीरता की भावनाएँ उसमें प्रबल होने लगी। कभी-कभी सुरनाथ उसे अपनी जन्मभूमि टोंक की कहानी सुनाता। वह कहता कि भारत की छाती पर दुष्ट यवनों का नंगा नाच हो रहा है। उनके अत्याचार और बलात्कार के सामने असुरों की दानवता भी मात हो रही है। वह अपनी पुत्री को समझाता था कि विदेशियों को मातृभूमि से बाहर निकाल देना प्रत्येक हिन्दुस्थानी का कर्तव्य है। पिता के वीरता-

पूर्ण प्रवचनों को सुनकर तारा कहने लगती थी कि 'आप राजपूतों की सेना तैयार कर शत्रुओं पर आक्रमण करें, सेनापतित्व का भार मेरे कंधों पर होगा।'

पिता ने वीर पुत्री की बात मानकर बहुत बड़ी सेना तैयार की, अफगानों से मुठभेड़ हुई। तारा ने बड़ी वीरता से अफगानों का सामना किया। अन्त में उसकी हार हुई, लेकिन इस पराजय से वह जरा भी हतोत्साह नहीं हुई। उसकी वीरता की कहानी चारों ओर बिजली की तरह फैल गयी। बहुत-से राजकुमारों ने उसका पाणिग्रहण करना चाहा, लेकिन उसे तो अपने प्राण या सुख-विलास की चिन्ता ही नहीं थी। वह पराजय रूपी अपमान का बदला चुकाने के लिये सेना-संगठन में लगी हुई थी।

इस समय चित्तौड़ के सिंहासन पर राणा रायमल्ल आसीन थे। उनके दो वीर पुत्र जयमल्ल और पृथ्वीराज थे। जयमल्ल ने राव सुरनाथ के पास कहला भेजा कि मैं तारा से विवाह करना चाहता हूँ। इस पर तारा ने जवाब दिया कि मैं उसीसे विवाह करूँगी, जो टोंक से अफगानों को निकाल दे। जयमल्ल ने सेना लेकर विदूर में पड़ाव डाल दिया और महीनों वह पड़ा रहा। यह तो उसका कपटजाल था। वह धोखा देकर विवाह कर लेना चाहता था। एक दिन वह उसके महल की ओर चोरी से जा रहा था कि राव सुरनाथ ने उसे मरवा डाला।

जयमल्ल के भाई पृथ्वीराज ने राव सुरनाथ के प्रति पूरी सहानुभूति दिखायी; उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं टोंक से

अफगानों को बाहर निकालूँगा। तारा पृथ्वीराज के वीर-वचनों

पर मुग्ध हो गयी। राजपूत-सेना टोंक की ओर बढ़ी। तारा पृथ्वीराज के साथ थी। अफगानों के पैर उखड़ गये। अब क्या था, टोंक पर राव सुरनाथ की विजयिनीपताका फहराने लगी। तारा का विवाह पृथ्वीराज से हो गया। कुछ दिनों के बाद पृथ्वीराज को मेवाड़ की प्रजा का पत्र मिला, जिसमें उसकी सहायता माँगी गयी थी; क्योंकि सूरजमल मेवाड़ में यवनों का आह्वान कर रहा था। पृथ्वीराज चिन्तित हो उठा। राजरानी तारा ने उसे सान्त्वना दी और कहा कि 'मैं भी उन यवनों से निपटूँगी।' पृथ्वीराज के अनेक बार समझाने पर भी वह अपने वचन पर अडिग रही। दोनों एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ की तरफ बढ़ चले। जब उन्होंने देखा कि सूरजमल मालवा के सुल्तान की सहायता से मेवाड़ को नष्ट कर देना चाहता है, तब दोनों क्रोध से पागल होकर शत्रु-सेना पर टूट पड़े। तारा ने विकट युद्ध किया। सूरजमल हार गया। दम्पति सुख से कमलपुर में रहने लगे।

दो ही चार दिनों के बाद पृथ्वीराज को बहिन का पत्र मिला, जिसने लिखा था कि सिरोही की हालत चिन्तनीय है, अत्याचार की चक्की चल रही है। दोनों सिरोही की ओर चलने की बात सोच ही रहे थे कि पृथ्वीराज ने अकेले प्रस्थान करना उचित समझा। वह बारह बजे रात को सिरोही के किले में पहुँच गया। अपने बहनोई को जगाकर दण्ड देना चाहता ही था कि उसने गिड़गिड़ा कर क्षमा माँग ली। बहिन के सोहाग का खयाल

कर उसने क्षमा कर दिया और दूसरे दिन कमलपुर के लिये चल पड़ा। सिरोही के राजकुमार ने कपट किया, उसने पृथ्वीराज को रास्ते में जलपान के लिये विषमिली मिठाई दी थी, जिस को विना सोचे-समझे उसने खा लिया। अम्बा देवी के मन्दिर तक पहुँचते-पहुँचते विष उसके सारे शरीर में फैल गया। जब तारा को पता चला तो नंगी तलवार लेकर वह सिरोही के राजकुमार प्रभुराय का सिर काटने के लिये चल पड़ी; परन्तु रास्ते में पति के शव ने उसका उत्साह और क्रोध ठंडा कर दिया, पति के शव के साथ ही वह चिता में भस्म हो गयी। पति का साथ देने में ही उसकी वीरता की कड़ी परख थी।

तीन वीर क्षत्राणियाँ

(कर्मदेवी, कमलावती और कर्णवती)

'बेटा! मेवाड़ पर प्रबल शत्रु ने आक्रमण किया है। सेना लेकर जा और महाराणा की सहायता कर!' राजमाता कर्मदेवी ने राजपूताने के केलवाड़ा प्रदेश के शासक अपने सोलह वर्ष के

पुत्र पूत को आदेश दिया। बादशाह अकबर की सेना ने महाराणा उदयसिंह पर आक्रमण किया है, यह समाचार पहुँच चुका था।

'मा! राणाजी ने मुझे युद्ध का आमन्त्रण नहीं भेजा है।' नरेश पूत ने उत्तर दिया।

'बच्चे! राणा दयालु हैं। तू अभी बच्चा है, यह समझ कर उन्होंने तुझे नहीं बुलाया। क्या होगया इससे! मेवाड़ वासी राजपूत होकर मातृभूमि पर संकट आने पर भी तू चुप बैठा रहेगा? राणा की प्रजा होकर शत्रु के आक्रमण के समय उनकी सहायता न करेगा? संकोच न कर! तू मेरा पुत्र है। अल्प-वया होने पर भी वीरता में तू किसी से कम नहीं। राणा ने नहीं बुलाया तो न सही; जन्मभूमि तुझे पुकारती है। जन्म-भूमि के आह्वान से राणा के आमन्त्रण का मूल्य क्या अधिक है? सैन्य सजा और शीघ्रता कर! कदाचित् राणा तेरी सहायता बालक समझकर स्वीकार न भी करें तो स्मरण रखना कि तू स्वदेश की सेवा के लिये जा रहा है। राणा की स्वीकृति का कोई अर्थ नहीं। तुझे स्वदेश की सेवा अवश्य करनी है। प्रस्थान कर, पुत्र! प्रभु तेरा मंगल करें!' राजमाता ने प्रोत्साहित किया।

ऐसी माताओं के पुत्र कापुरुष नहीं हुआ करते। सिंहिनी गीदड़ नहीं जनती। पूत शूर थे। माता का आदेश स्वीकार किया उन्होंने।

भाई को विदा करते समय वीर-भगिनी कर्णवती ने जोशीले शब्दों में कहा—

बोली वीर भगिनी मैं तोपै बलिहारी वीर,
जगावत शूर और जरी मम जो की है।
जननी हमारी जन्मभूमि हित जावत तू,
कीमत अपार कहाँ केती या घरी की है।
कै तो जीति एहु कै पयान कर देहु प्रान,
सुनत अथाह चतुरंगिनी अरि की है।
मो कों शरमावै मत सासरे-समाज बीच,
तेरे भुज भाई! लाज मेरी चून्दरी की है॥

सैन्य लेकर वे चित्तौड़ की ओर चले। पुत्र के चले जाने पर राजमाता कर्मदेवी ने पुत्री तथा पुत्र-वधू से कहा—'मेरा बच्चा पूत अभी भी बालक है, अनुभवशून्य है। मैं उसे युद्ध में भेज कर निश्चिन्त नहीं रह सकती। जा रही हूँ—जहाँतक सम्भव होगा, सहायता करूँगी।'

'मा! मैं भी तुम्हारी पुत्री हूँ। तुमने मुझे हाथों में स्वर्ण-कङ्कण पहनने के साथ तलवार सम्हालने की भी शिक्षा दी है। अपने भैया की सहायता करूँगी मैं। मुझे रोको मत! साथ ले चलो।' राजकुमारी कर्णवती ने आग्रह किया।

'मैं उन शूर की सहधर्मिणी हूँ। उनकी प्रत्येक दशा में सेवा करना मेरा कर्तव्य है। वे विजयी होंगे तो मैं साथ लौटूँगी और

कदाचित् उन्होंने वीर-शय्या ली, तो क्षत्राणी परलोक तक पति के साथ जाना गर्भ से ही सीख कर आती है। मा! मुझे यहाँ मत छोड़ो।' पुत्र-वधू कमलावती ने सास के चरण पकड़ लिये।

'ठीक, चलो!' तनिक सोच कर राजमाता ने दोनों को आदेश दे दिया। शस्त्रसज्ज होकर तीनों क्षत्राणियाँ घोड़ों पर बैठीं। चित्तौड़ के प्रायः सभी सामन्त राणा की सहायता को आये थे। बदनोर के ठाकुर जयमल्ल को महाराणा ने सेनापति बनाया। युद्ध में वे खेत रहे। इस अवसर में पूत ने जो शूरता एवं रणकौशल प्रदर्शित किया था, उससे राणा ने द्वितीय सेनापति का गौरव उन्हें प्रदान किया।

अकबर ने एक बड़ी सेना पूत के सम्मुख भेज दी और स्वयं घूमकर एक पहाड़ी मार्ग से पूत के पृष्ठभाग पर आक्रमण करने के लिये विशाल सैन्य लेकर चल पड़े। एक तंग जगह पर पहुँचते ही सम्मुख से गोलियों की वर्षा का सामना करना पड़ा मुगलसेना को। इस आक्रमण का बादशाह ने अनुमान तक नहीं किया था। प्रत्येक गोली एक सैनिक की भेंट ले रही थी। बादशाह को तब और भी आश्चर्य हुआ, जब उन्हें उनके एक चर ने वृक्ष पर से देखने के पश्चात् बताया कि केवल तीन स्त्रियाँ पर्वत की एक आड़ से यह गोली-वर्षा कर रही हैं। राजमाता कर्मदेवी चुप-चाप आयी थी। उन्होंने किसी को वहाँ सूचना नहीं दी थी। युद्धस्थल का निरीक्षण करके उन्होंने समझ लिया था कि इस मार्ग से पूत पर पीछे से आक्रमण हो सकता

है। मार्ग की रक्षा के लिये पुत्री तथा पुत्र-वधू के साथ एक

अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थान पर उन्होंने मोर्चा बना लिया था।

'केवल तीन स्त्रियाँ!' बादशाह को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सैनिकों को प्रोत्साहित किया। धड़ाधड़ सैनिक गोली खाकर गिरते जा रहे थे, फिर भी वे बढ़ रहे थे। एक गोली लगी और राजकुमारी कर्णवती गिर पड़ी। राजमाता ने केवल एक दृष्टि पुत्री पर डाली। मृत्यु का वरण करने तो वे तीनों आयी ही थीं। इस समय शोक कैसा? राजकुमारी के प्राण परलोक की यात्रा में और राजमाता गोलीवर्षा में लग गयीं। कहाँ तक दो स्त्रियाँ पूरी सेना का सामना करतीं। गोलियाँ लगीं, दोनों गिर पड़ीं।

'मा, तुम! और यह!' इसी समय अपने सम्मुख की सेना को पराजित करके पूत पहुँच गये। उन्हें बादशाह के इधर आने का समाचार मिल गया था। माता तथा पत्नी को देखकर वे चौंके। उन्होंने बैठकर दोनों को दोनों जानुओं पर उठाया। सेना को आगे बढ़ने का वे आदेश दे चुके थे। कमलावती ने एक बार मस्तक उठाया। नेत्र खुले और पति के दर्शन करके सदा के लिये खुले रह गये। पति के अङ्क में ही उन्होंने शरीर छोड़ा।

'बेटा! युद्ध की यह गड़बड़ मैं सुन रही हूँ। तू यहाँ किसलिये समय नष्ट कर रहा है? सेनापति से हीन सेना क्या कर लेगी? शत्रुओं को जीत कर देश की रक्षा करने में तू समर्थ

हो तो ठीक ; नहीं तो युद्ध में सम्मुख लड़ते हुए शरीर छोड़ना। स्वर्ग में मैं तुझे बधाई देने को प्रस्तुत रहूँगी। तेरी बहिन तेरा स्वागत करेगी और तेरी पत्नी तेरी प्रतीक्षा करती मिलेगी।' राज-माता सम्भवतः पुत्र को यही आदेश देने को प्राण रोके थीं।

'हर-हर महादेव ! जय श्रीएकलिङ्ग !' पूत ने शत्रुओं पर आक्रमण किया और युद्ध के पवित्र तीर्थ में शरीर छोड़ा उन्होंने।

सती सारन्धा

नारीत्व के तीन आधार सतीत्व, पातिव्रत्य और सदाचार हैं ; इन तीनों सद्‌गुणों की त्रिवेणी में लेखकों, कवियों और चारणों ने एक नहीं, हजारों बार स्नान कर अपनी लेखनी, वाणी और कविताएँ पवित्र कर ली हैं। जिस वीर की यशोगाथा गाने के लिये कवियों की वाणी मचल उठी, जिसकी प्रशंसा में शिवाजी महाराज के कवि भूषन ने 'रैयाराव चम्पत को छत्रसाल महाराज, भूषण सकै को बखान करि बलन के' लिख डाला, उसी छत्रसाल की वीर माता का नाम सारन्धा था। वह रूपवती, उदार और परम वीरहृदया थी। इस सती ने सुख की कोमल सेज त्यागकर कांटेदार झाड़ियों को अपना निवास स्थान बनाया। इस रानी के तपोमय आदर्श और त्याग मूलक वीरत्व के काम जीवन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न करते हैं।

सारन्धा चम्पतराय की वीर पत्नी थी। उसकी वीरता की गाथाएँ शाही दरबार में भी कही-सुनी जाती थीं। रानी सारन्धा टेकड़ी के शासक अनिरुद्धसिंह की बहन थी। अनिरुद्धसिंह की रानी शीतला अपने पति को बहुत प्रेम करती थी, लेकिन सारन्धा देश और मातृभूमि की रक्षा में सदैव तत्पर रहती थी।

एक दिन रात में घना अन्धकार छाया हुआ था। शीतला पति के वियोग में आँसू बहा रही थी। सारन्धा भी पास ही बैठी थी। इतने में अनिरुद्धसिंह आ पहुँचा। उसके कपड़े भीगे थे, हथियार छीन लिये गये थे। शीतला ने पति की अवस्था पर बड़ी चिन्ता प्रकट की। वह दुश्मनों से हारकर चला आया था। सारन्धा की नसों में बिजली दौड़ गयी। उसने उत्तेजित होकर कहा—'जिस कुल की मान रक्षा के लिये समय-समय पर लाखों वीरों ने रणाग्नि में अपने प्राणों की आहुति दे दी, उसीको तुमने खो दिया!' बहिन की इस उक्ति से अनिरुद्ध का मस्तक लज्जा से झुक गया; उसने सेना लेकर रण की ओर फिर प्रस्थान किया और शत्रुओं को पराजित कर अपनी जन्म-भूमि की मान-मर्यादा रक्खी।

सारन्धा का विवाह कालान्तर में बुंदेलखण्ड के (ओरछा) नरेश चम्पतराय से कर दिया गया। चम्पत ऐसी वीर पत्नी को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राय के कई रानियाँ थीं, पर वह सारन्धा को उसके विशेष गुणों के कारण अधिक मानता-जानता था।

चम्पतराय ने गद्दी पर बैठते ही मुगलों को 'कर' देना बंद कर दिया था। कुछ कारणों से उसने दिल्लीपति शाहजहाँ का प्रश्रय चाहा और वह रानी सारन्धा के साथ दिल्ली चला आया। बादशाह ने उसे कुम्हारगढ़ किले पर अधिकार करने के लिये भेजा। राय ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली और शीघ्र ही वह दास का एक विश्वासपात्र मित्र बन गया। चम्पतराय कुछ विलासी था। रानी सारन्धा पति की इस विलास-प्रियता से मन-ही-मन चिढ़ती थी। वह नहीं चाहती थी कि मेरा पति प्रजा-पालन-धर्म भूलकर दिल्ली में गुलछर्रे उड़ाये। बहुत समझाने-बुझाने पर आखिर राय चम्पत की नींद टूट गयी, वह अपनी खोयी स्वाधीनता प्राप्त कर बुंदेलखण्ड में एक स्वाधीन राजा की तरह राज करने लगा। सारन्धा को वह आदर की दृष्टि से देखता था, इसलिये उसकी प्रत्येक सलाह के अनुसार उसने राजप्रबन्ध करना आरम्भ किया।

इसी बीच में शाहजहाँ बीमार पड़ा। उसके शाहजादों में राजगद्दी के लिये युद्ध छिड़ गया। औरंगजेब उस समय दक्षिण का सूबेदार था। वह एक सेना लेकर चल पड़ा; परन्तु दाराशिकोह की विशाल सैन्य-शक्ति ने उसे विवश किया कि वह बुंदेलखण्ड के महाराज चम्पतराय की सहायता ले। राजपूत शरणागत की रक्षा जान की बाजी लगा कर भी करते है। रानी सारन्धा ने पति को समझाया कि औरंगजेब की सहायता करना कर्तव्य है। उसकी सहायता से सन् १६५८ ई० में औरंगजेब ने

चम्बल नदी पार कर दारा को परास्त करने के लिये सेना सुसज्जित की। इस युद्ध में रानी सारन्धा भी पति के साथ थी। विकट मार-काट के बाद औरंगजेब विजयी हुआ। उसने चम्पतराय को जागीर दी, राजा का विलासी जीवन और कार्य-क्रम देखकर सती सारन्धा को बड़ा दुःख हुआ।

उत्तराधिकार के युद्ध में वलीवहादुर का, जो दारा का एक सरदार था, घोड़ा औरंगजेब ने चम्पतराय को पुरस्कार स्वरूप दिया। चम्पतराय की अनुपस्थिति में सारन्धा के पुत्र से वली-वहादुर ने घोड़ा छीन लिया। रानी ने वालक की कायरता पर बड़ा दुःख प्रकट किया और वह वलीवहादुर से घोड़ा छीन कर ही रही। उसने औरंगजेब से भी वात-की-वात में कह डाला था कि 'मुझे मान वहुत प्रिय है, इस घोड़े के लिये मैं जागीर तक वापिस कर सकती हूँ।' औरंगजेब इस पर जल-भुन उठा। जागीर वापस कर दी गयी। राजदम्पति दिल्ली से बुंदेलखण्ड चले आये।

परन्तु उन पर औरंगजेब की गृध्रदृष्टि सदा बनी रही। यवनों ने आक्रमण किया। कृतघ्न औरंगजेब चम्पतराय को धूलि में मिला देना चाहता था। बुंदेलों ने जमकर युद्ध किया, रानी सारन्धा घोड़े पर सवार होकर दुर्गा की तरह यवनों को गाजर-मूली की तरह काट-काटकर मृत्युदेवता को वलि देने लगी। यवन हार गये। औरंगजेब ने दूसरी वार बहुत बड़ी फौज भेजी; इस बार राजा हार गया, परन्तु पकड़ा न गया।

वह अपनी वीर रानी के साथ जंगलों और पहाड़ों में घूमता रहा

एवं मुगल पीछा करते रहे। एक बार वह घायल सिंह पालकी में बैठ कर कहीं दूर जा रहा था कि अचानक मुगल सैनिक आ पहुँचे। राजा नहीं चाहता था कि 'मैं पराधीनता की बेड़ी में जकड़ा जाऊँ', उसने रानी से कहा कि 'तुम मेरी छाती में तलवार भोंक दो।' रानी की आँखों में प्रेम की जल-धारा छलछला उठी। उस पति-परायणा ने पति का आदेश पालन किया। राजा ने स्वर्ग की यात्रा की। यवनों का हृदय द्रवीभूत हो उठा; उन्होंने रानी से कहा कि 'आपकी वीरता धन्य है।' रानी नहीं चाहती थी कि यवन मेरे पवित्र शरीर में जीते-जी हाथ लगायें, अतएव उसने अपनी छाती में भी खून से रँगी तलवार भोंक ली और पति के साथ स्वर्ग चली गयी।

वीराङ्गना रूपाली

बात है उस समय की, जब आज की तरह यातायात के साधन सुलभ नहीं थे, पंद्रह-बीस मील भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये साथी की आवश्यकता पड़ती थी। डाकू और लुटेरों का आतङ्क सर्वत्र छाया रहता था। उस समय कुछ लोग अपने पास दस-पाँच आदमियों को रखते और किसी को कहीं पहुँचवाना होता तो उचित मूल्य पर अपने साथी साथ

लगा देते। वे सुरक्षित पहुँचा आते। ऐसे लोगों की यही जीविका थी।

'मेरी पुत्री का आँचल भरना है। तुम उसे ससुराल से ले आओ, गेमो भाई!'—माणिकपुर गाँव के जमींदार ने गेमो से कहा। गेमो को अपनी वीरता पर गर्व था और सचमुच वह जहाँ अकेले जाता, दस-पाँच छँटे पहलवान भी एक साथ उसका सामना करने का साहस नहीं कर पाते। जमींदार की आज्ञा टालने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

'अच्छी वात है।' गेमो तैयार हो गया।

जमींदार की पुत्री का नाम था रूपालीवाई। उसकी ससुराल माणिकपुर से दस मील दूर पड़ती थी। गेमो ने उसे लाने के लिये प्रस्थान कर दिया।

गर्मी के दिन थे। उषा विदा भी नहीं हो पाती थी कि अंशुमाली अपनी अग्निमयी किरण-शलाकाओं से वसुन्धरा के वक्षःस्थल को छेदने लगते। पशु-पक्षी सभी त्रस्त होकर एकान्त शीतल छाया में भागकर मुँह छिपा लेते। इसी कारण ठंडे-ठंडे में पहुँचने के लिये बैलों की तीन गाड़ियाँ रात में ही जुत गयीं। आगे की गाड़ी पर खाने-पीने का सामान था। बीच वाली गाड़ी पर अपने आभूषणों को लेकर रूपालीवाई बैठी थी। आभूषण उसके पास लगभग पाँच सहस्र रुपये के थे और पिछली गाड़ी पर गेमो कुछ अन्य सामग्रियों के साथ बैठा था। गाड़ियाँ धीरे-धीरे चलने लगीं।

रात कृष्ण पक्ष की थी। आकाश निरभ्र था। तारे चमक रहे थे। शीतल, मन्द समीर बह रहा था। गेमो की पलकें झँपने लगीं। इसी बीच में अगले गाड़ीवान ने पुकार कर कहा—'गेमो भाई! रात्रि का समय है, जगते रहो।'

'मैं गेमो हूँ, मेरे सामने कोई नहीं आ सकेगा। तुम गाड़ी हाँकते जाओ।' ऊँघते-ऊँघते गेमो ने उत्तर दे दिया।

'भैया गेमो! जागते रहो, अँधेरी रात है'—कुछ दूर आगे जाने पर रूपालीबाई ने कहा।

'तू निश्चिन्त रह, बाई! तेरा भाई गेमो तो साथ ही है।' पाँव पसारते हुए उसने कहा। 'मेरे सामने कौन आ सकेगा।' धीरे-धीरे वह खुर्राटे लेने लगा।

× × × ×

'गेमो भाई!' गाड़ीवान ने जोर से पुकारा।

'मैं गेमो हूँ,' निद्रित गेमो ने धीरे से कहा।

'गेमो भाई!' डरती हुई रूपाली ने पुकारा। दस-बारह लुटेरों ने उसकी गाड़ियाँ घेर ली थीं।

'मैं गेमो…' वह बड़-बड़ाकर रह गया।

× × × ×

'तुम्हारे पास जो कुछ हो, दे दो'—एक लुटेरे ने कर्कश स्वर में कहा।

'मेरे गहने ये हैं।' रूपाली ने पेटी सरका दी।

'गले का गहना' दे', दूसरे लुटेरे ने कहा। गले का सोने का आभूषण चमक गया था।

'कड़े उतार।' फिर एक ने कहा।

'मेरे सारे गहने तो ले लिये,' रोते-रोते रूपाली ने कहा। 'कड़ा छोड़ दो, भैया !'

'वात मत वना, तुरंत निकाल।' लुटेरे ने डाँटा।

'तुम्हीं निकाल लो। मुझ से तो नहीं निकलता।'—रूपाली से कड़ा नहीं निकला। विवश होकर उसने कहा।

'ये पैर क्या हैं, कमल के फूल भी लजा जायँगे इन्हें देखकर।' कड़ा निकालने का प्रयत्न करते हुए एक लुटेरे ने व्यंग्य किया।

रूपाली इसे सह नहीं सकी। समस्त सम्पत्ति ले लेने की उसे चिन्ता नहीं थी, वह फिर आ जाती। विना गहने पहने भी वह रह सकती थी, पर सतीत्व पर तनिक भी आघात भारतीय ललना को क्षणभर में ही उग्र-रूप-धारिणी महाकाली वना देता है। उस समय वह या तो पापी को मिटा देती है या अपना ही वलिदान कर देती है ; प्रत्येक दशा में वह देवलोक की अधिकारिण वनती है।

कटि से कटार खींचकर रूपाली ने दो लुटेरों के सिर तुरंत धड़ से अलग कर दिये, जो उसके पैर से गहने निकाल रहे थे। रूपाली गर्भवती थी। वह शीघ्र ही सन्तान उत्पन्न करने वाली थी। उसने समझ लिया था कि ये लुटेरे अव मुझे जीती नहीं छोड़ेंगे। वह गाड़ी से कूद पड़ी। वचे हुए दसों लुटेरे

गर्भवती रूपाली पर लाठी-वर्षा करने लगे। रूपाली का शरीर
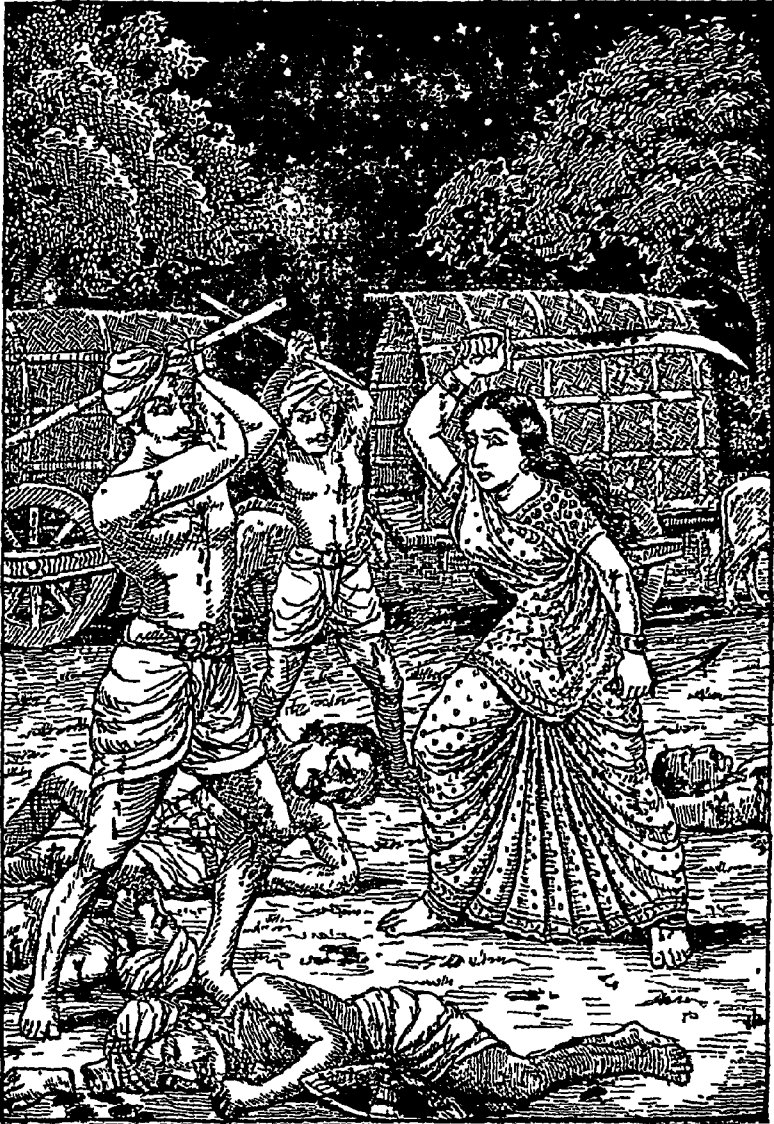
छिलने लगा। रूपाली वीर पिता की पुत्री थी। उसकी रग-रग में वीरता भरी थी। अस्त्र-शस्त्र चलाने का अभ्यास भी शैशव में उसने खूब किया था। डाकुओं के पास केवल एक तलवार थी, रूपाली ने उसे दुवक कर ले लिया था।

लाठी पड़ते ही वह कन्नी काट लेती और दूसरे ही क्षण तलवार से लुटेरों पर वार करती। उसकी तलवार ने जिस लुटेरे का कण्ठ स्पर्श किया, वही यम-सदन को सिधारा।

रूपाली का शरीर खून से लथपथ हो गया था। शरीर में अनेक घाव हो गये थे, फिर भी वह तलवार चलाती जा रही थी। आठ लुटेरे वहीं सदा के लिये सो गये। दो अपनी जान लेकर भागे।

'वहिन, मुझे बचा!'—करुणाभरी ध्वनि तीसरी गाड़ी से निकली। रूपाली ने देखा, वह गेमो था। जो अपनी वीरता के मद से अंधा हो रहा था, उसके हाथ-पांव लुटेरों ने कसकर बांध दिये थे। बीच में डंडा लगा दिया था। वह हिल-डुल भी नहीं सकता था। रूपाली ने उसके बन्धन काट दिये।

'बहिन! अब तू गाड़ी पर बैठ जा।'—गेमो ने लज्जा और विनय से कहा।

'मैं गाड़ी पर नहीं बैठूंगी', रूपाली ने जवाब दिया। 'मैं पैदल ही चलूंगी। गाड़ी ले चलो।'

गाड़ी चल पड़ी। गेमो दम साधे चुपचाप गाड़ी के पीछे-पीछे चल रहा था। वह रूपाली की वीरता देखकर स्तम्भित

रह गया था। रूपाली चण्डिका बन गयी थी। उसकी आँखों से जैसे आग बरस रही थी। बाल उसके बिखरे थे। हाथ में लंबी तलवार चमक रही थी। शरीर से रक्त टपक रहा था।

'मैं सीधे घर जाऊँगी।' बीच में मामा का गाँव पड़ा था। मामा के आग्रह करने पर रूपाली ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया।

गाड़ीवान गाड़ी हाँके जा रहे थे। गर्भवती वीर नारी महाकाली के रूप में साथ-साथ चल रही थी।

× × × ×

'गेमो कहाँ गया?' रूपाली के पिता (माणिकपुर के जमींदार) ने चकित होकर पूछा। अपनी पुत्री की दशा देखकर वे घबड़ा गये थे।

'माणिकपुर के पास आते ही मुँह छिपाकर वह जाने कहाँ चला गया।'—गाड़ीवान ने सारी घटना सुना दी।

'चिन्ता न कर, बेटी! आभूषणों से मैं तुम्हें लाद दूँगा।' जमींदार ने अपनी बेटी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा।

रूपाली को देखने गाँव के सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े और सयान एकत्र हो गये थे। सब-के-सब चकित थे। दो घंटे के बाद रूपाली वहीं लेट गयी। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

फूल देवी

पुरन्दर ने फूलबाई का मार्मिक पत्र एक ही सांस में पढ़ लिया। उन्हें तृप्ति नहीं हुई। एक बार, दो बार, तीन बार, कई बार उन्होंने उसे पढ़ा। उनकी आंखें झर रही थीं, पर पत्र वे पढ़ते ही जा रहे थे। बचपन का सारा दृश्य उनकी आंखों में झूल गया।

पुरन्दर के ही देवल गांव में विधवा वृद्धा की एकमात्र पुत्री फूलबाई थी। वही अपनी मा की आंखों की पुतली, अंधे की लाठी, जीवन का सहारा थी। पुरन्दर और फूलबाई दोनों गांव की पाठशाला में एक ही साथ शिक्षा पाते थे। बाल्यकाल में दोनों में खूब प्रेम था। दोनों परस्पर हिल-मिल कर पढ़ते और साथ ही खेला करते। वयस् के साथ साथ उनका प्रेम भी बढ़ता गया।

फूलबाई को यौवन में प्रवेश करते देखकर उसकी माता ने पुरन्दर के साथ विवाह करना निश्चित कर दिया; पर इस कामना की पूर्ति भी नहीं हो पायी कि वह काल के कराल गाल में चली गयी। फूलबाई वृक्ष से गिरी लतिका की भांति मुरझाने लगी।

यह अनुपम लावण्यवती थी। इसीके गांव में औरंगजेब ने इसे देखा और लुब्ध हो गया। उसके सैनिक फूलबाई को

उठा ले गये। वह बेगमों की प्रधान बनी। फूलजानी बेगम उसका नाम पड़ा।

पर वह इससे बहुत ही दुखी थी और उसने आत्महत्या का विचार कर के पुरन्दर को मार्मिक पत्र लिखा था। एक बार अन्तकाल में दर्शन की कातर प्रार्थना की थी उसने।

'मेरी सहायता तुम कर सकोगी ?' आँसू पोंछते हुए पुरन्दर ने पत्र-वाहिका से पूछा। वह फूलजानी बेगम की प्राणप्रिय और परम विश्वस्त बाँदी थी।

'बेगम साहिबा की ख्वाहिश पूरी करने के लिये अपनी जान भी दे सकती हूँ'—उसने तुरंत जवाब दिया।

'तो मुझे अपनी बेगम के पास ले चलो।' पुरन्दर बाँदी के पीछे-पीछे चल पड़े।

× × × ×

'मैं परम अपवित्र हूँ; मुझे स्पर्श न करें, नाथ! फूल ने रोते-रोते कहा। उसकी आँखों में आँसू की बाढ़ आ गयी थी!

'तुम परम पवित्र हो देवी!' फूल को अपने अङ्क में लेते हुए पुरन्दर ने कहा। 'जिसका मन और जिस की आत्मा अपवित्र नहीं है, जो विवश है, मन से जिसने पर-पुरुष की ओर दृष्टि भी नहीं डाली, वह नारी काया से बन्धन में पड़ कर भी अपवित्र नहीं मानी जा सकती। मैं तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनाकर रक्खूँगा, रानी।'

'मैं ऐसा नहीं होने दूँगी, स्वामी! मैं आपके योग्य नहीं रह गयी हूँ' रोते-रोते फूल ने कहा। 'आप मेरा कहा मान लें, स्वामी! समय बहुत कम है।'

'क्या चाहती हो, फूल?' पुरन्दर की आँखें छलछला आयीं।

'आपके दर्शन के लिये ही मैं जीवित थी,' उसने बड़ी धीरता से आँसू पोंछते हुए कहा। 'मैं चाहती हूँ अपने ही हाथों आप मेरा प्राणान्त कर दें। मैं पवित्र हो जाऊँगी। मेरी आकांक्षा पूरी हो जायगी। परलोक में पुनः आपकी सेवा में आ जाऊँगी।'

'यह क्या कहती हो, फूल!' पुरन्दर ने उदास होकर कहा।

'मैं जो कह रही हूँ, वही ठीक है। आप मेरी लालसा पूरी करें। मराठा राजपूत हैं आप!' वह बोल गयी।

पुरन्दर ने कटार खींच ली। हाथ ऊपर उठाया, कटार चमक गयी। पुरन्दर का कलेजा धड़क उठा और हाथ हिल गया; पर फूल के चेहरे पर प्रसन्नता नाच उठी।

सहसा पीछे से एक बाँदी ने हाथ पकड़ लिया। पुरन्दर सन्न रह गये। फूल क्रोध से काँप उठी।

'हाथ छोड़ दे। मैं बेगम होकर हुकुम दे रही हूँ।' बेगम ने जोर से डाँटा, बाँदी भाग खड़ी हुई।

× × × ×

'नालायक बाँदी ने बादशाह को सारा भेद बता दिया,' फूल

ने घबराहट से कहा, 'आप इस सुरंग की राह शीघ्रता से चले जायँ। सुरंग-द्वार पर सुसज्जित अश्व तैयार है।'

पुरन्दर सुरंग में घुसे। घोड़े पर सवार हो भाग निकले, पर औरंगजेब के सैनिक उनके पीछे लग गये थे। सैनिकों के बाण पुरन्दर के शरीर में चुभते जा रहे थे। रक्त टपक रहा था, पर वे वायु-विनिन्दक गति से घोड़ा भगाये लिये जा रहे थे। अन्त में उनका शरीर शिथिल पड़ गया। वे पकड़ लिये गये।

'महल के भीतर कैसे पहुँचे?' औरंगजेब ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा। 'वहाँ कोई आदमी नहीं जा पाता। भेद बता देने पर मैं तुम्हें माफ कर दूँगा।'

'तुम्हारे-जैसे चोरों से वीर मराठे माफी नहीं चाहते,' क्रोध से काँपते हुए लाल आँखें किये पुरन्दर ने उत्तर दिया। 'तुमने मेरे सर्वस्व—मेरी पत्नी की चोरी की थी। मैं उसे ही लेने आया था।'

औरंगजेब अपमान नहीं सह सकता था। उसने पुरन्दर को तुरंत प्राणदण्ड की आज्ञा दी। बाणविद्ध पुरन्दर के शरीर में चमकती हुई संगीनें चारों ओर से धँस गयीं। औरंगजेब अपनी आँखों से देख रहा था।

सहसा पीछे की ओर से एक दर्दभरी चीख सुनकर वह घबरा गया। देखा तो हाथ में कटार लिये फूलजानी बेगम भागती आ रही है। उसकी बिथुरी केशराशि नागिनों की तरह पीठ पर लहरा रही थी। वह चण्डी बन गयी थी।

औरंगजेब कांप उठा। एक क्षण सैनिक भी स्तब्ध रह गये।

उन्होंने बेगम के हाथ से कटार छीनने की कोशिश की, किन्तु इसके पूर्व ही कटार उसके कोमल हृदय में प्रवेश कर गयी। फूल गिर पड़ी। खून का फौवारा छूट पड़ा!

मरते-मरते उसने कहा—'हिन्दू-नारी का पति ही सर्वस्व होता है। विश्व की कोई शक्ति भी उसे अपने पति से अलग नहीं कर सकती। महल में बंद रह कर भी मैं इन्हीं देवता के चरणों में थी। इनके परलोक-गमन पर भी इन्हीं के पास जा रही हूँ।'

औरंगजेब ने सिर थाम लिया। हिन्दू-नारी की पति-भक्ति देखकर वह चमत्कृत हो गया। अहमदनगर किले के बाहर उसने एक समाधि बनवायी। सात दिनों तक अनवरत रूप से बादशाह के आज्ञानुसार उसकी सारी बेगमें समाधि पर फूल चढ़ाती और दीपक जलाती थीं।

समाधि पर उसने निम्नाङ्कित आशय का एक फारसी-शैर भी खुदवाया था। सुनते हैं, वह अबतक विद्यमान है।

जो मैं ऐसा जानता, सरल बालिका माहि!
इतना अतुलित प्रेम है, फूल छेड़ता नाहि॥

वीराङ्गना अच्छनकुमारी

आठवीं से वारहवीं सदी के वीच का समय भारतीय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। हिन्दुओं की सार्व-भौम सत्ता समाप्त हो चुकी थी। यह सामन्त शाही का युग था। देश छोटे-छोटे राजपूत-राज्यों में विभक्त हो चुका था। इस विशिष्ट युग के अन्तिम चरण में दिल्ली की गद्दी पर अन्तिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज थे; उनकी वीरता की कहानियों से कावुल, तासकन्द, वगदाद, ईरान आदि के यवनाधिपतियों के कलेजे दहल उठे थे। महमूद गजनवी ने कुछ दिन पहले आक्रमण किये थे। लेकिन उसके मरने के वाद यवन बहुत दिनों तक भारत पर हमला न कर सके। महाराज पृथ्वीराज के राज्यकाल के आरम्भ में महम्मद गोरी के दो-एक हमले हो चुके थे, परन्तु भारतीय राजनीति पर तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर उनका कुछ भी स्थायी परिणाम न हुआ। मुहम्मद गोरी को महाराज पृथ्वीराज ने कई वार परास्त भी किया था। इस युग की सब से वड़ी ऐतिहासिक विशेषता यह थी कि राजपूत-कन्या जिसे एक वार अपना पति स्वीकार कर लेती थी, उसे पाने के लिये वह प्राणों की वलि देने तक पर तुल जाती थी। चरित्र-नायिका अच्छनकुमारी ने पृथ्वीराज को अपने हृदय-सिंहासन पर वैठा लिया था। वह उनकी वीरता और शक्ति-सम्पन्नता पर अपने को न्योछावर कर चुकी थी।

अच्छन चन्द्रावती के राजा जैतसिंह की कन्या थी। पिता को उसके हृदय की बात ज्ञात हो गयी। जब पिता ने पूछा कि 'यदि पृथ्वीराज विवाह करने के लिये तैयार न होंगे, तब क्या होगा ?' तो उस वीर बाला ने कहा कि 'पृथ्वीराज सच्चे राजपूत हैं, वे राजपूत-कन्या की बात कभी नहीं टालेंगे और यदि उन्होंने टाल ही दी, तो मैं आजन्म कुमारी रहूँगी।' राजपूत-कन्या अपने प्रण पर अडिग रही। गुजरात का राजा भीमदेव बड़ा शक्तिशाली था, वह सुन्दरी अच्छन को अपनी पत्नी बनाना चाहता था। उसने जैतसिंह के पास बात-चीत चलाने के लिये अपने मन्त्री अमरसिंह को भेजा। जैतसिंह ने कहा कि 'राजपूत-कन्या की मँगनी एक ही बार होती है। यदि भीमदेव नहीं मानेंगे तो हमारे लिये अन्तिम रास्ता युद्ध ही होगा।' इस चुनौती का उत्तर भीमदेव ने आक्रमण से दिया। चन्द्रावती एक छोटी-सी रियासत थी, राजा ने अजमेर के राजा सोमेश्वरदेव से सहायता माँगी। सोमेश्वरदेव पृथ्वीराज के पिता थे। इसी समय मुहम्मद गोरी ने पाञ्चाल पर आक्रमण किया। सोमेश्वर दो विकट परिस्थितियों से घिर गये। एक ओर पुत्र-वधू की मानरक्षा का प्रश्न था तो दूसरी ओर देश से म्लेच्छों को बाहर निकालना था। वह एक बड़ी सेना लेकर चन्द्रावती की ओर चल पड़े और प्रधान सेनापति को आदेश दिया कि यवनों से लड़ने के लिये सेना सुसज्जित करें।

अभी सोमेश्वर चन्द्रावती नहीं पहुँचे थे कि पृथ्वीराज को

अच्छन का पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि 'भीमदेव ने सारे देश को उजाड़ दिया है, अजमेर से भी अभीतक सहायता नहीं मिली। यदि आप शीघ्र न आयेंगे तो इज्जत मिट्टी में मिल जायगी। मुझे आपका ही बल है और दृढ़ विश्वास है कि आप एक राजपूत-कन्या की मान-रक्षा में योग देंगे।' पृथ्वीराज सहायता के लिये अचलगढ़ किले की ओर चल पड़े। पाञ्चाल-देश में भी गोरी का सामना करने के लिये सेना भेज दी थी।

अचलगढ़ के किले में महाराज पृथ्वीराज पहुँच गये। वीर कन्या ने अपने भावी पति के दर्शन किये; भीमदेव के हाथों सोमेश्वर की मृत्यु का समाचार सुनकर सरदारों ने पृथ्वीराज का राजतिलक कर दिया। अच्छन से उनका विवाह हो गया और वह उनके साथ अजमेर चली आयी। अच्छन ने राजकार्य में बहुत अच्छे ढंग से भाग लिया था, उसमें चक्रवर्ती सम्राट् की रानी होने के सारे गुण विद्यमान थे। महाराज की पटरानी संयोगिता या संयुक्ता से भी उसकी काफी बनती थी, दोनों महल में प्रिय सहेलियों की तरह रहती थी।

सन् ११६३ में गोरी ने फिर भारतवर्ष पर आक्रमण किया। तलवड़ी या तिरौरी नामक स्थान पर घोर युद्ध हुआ, तुर्कों के पैर उखड़ गये। राजपूतों ने समझा कि 'गोरी फिर कभी न आवेगा।' पर घर की फूट बुरी होती है। राजा जयचन्द की मूर्खता से उसे फिर आक्रमण करने का मौका मिल गया।

पृथ्वीराज और उसकी सेना ने जी-तोड़ कर युद्ध किया, लेकिन

विजयसिंह नामक एक विश्वासघाती सरदार की चालों से वे पकड़ कर वन्दीगृह में डाल दिये गये।

जब उनके प्रधान सेनापति ने अच्छनकुमारी से महाराज की कैद की वात कही तो वह आपे से वाहर हो गयी। उसने सेनापति को बुरी तरह फटकारा और कहा कि 'रण से राजपूत कभी हारकर वापस नहीं आते। तुमने क्षत्रियत्व की अवमानना की है।' इतना कहकर वह झट घोड़े पर चढ़ गयी, उसके हाथ में नंगी तलवार विजली की तरह चमक रही थी, भाल में श्वेत चन्दन का तिलक था। उसकी केश-राशि पीठ पर गुम्फित होकर लटक रही थी। वह राजा को छुड़ाने के लिये चल पड़ी। उसने चलते समय कहा—'प्रजा का धर्म है अपने राजा की रक्षा करे; मैं राजराजेश्वरी नहीं, महाराज पृथ्वीराज की प्रजा हूँ। किसकी मजाल है महाराज को कैद में रक्खे।' राजपूत सैनिक हजारों की संख्या में उसके पीछे-पीछे चल पड़े। यवनों के छक्के छूट गये। विकट युद्ध हुआ।

राजपूतों ने स्वाधीनता के इस प्रथम युद्ध में अपने प्राणों की जिस प्रकार वलि दी, वह विश्व के इतिहास में एक अलौकिक और अभूतपूर्व घटना थी। रानी म्लेच्छ के एक वाण से मारी गयी। यवनों ने वहुत चाहा कि उसका शव मिल जाय; लेकिन स्वाभिमानी राजपूतों ने उसे चिता पर पहले ही रख दिया था। रानी ने अपने स्वामी की रक्षा के लिये अपने कीमती प्राणों की बलि दे

दी और शरीर अग्निदेवता को सौंप दिया। महाराज पृथ्वीराज गोर भेज दिये गये।

अपने इन्हीं त्यागों और बलिदानों के कारण हिन्दू जाति अमर है। हिन्दुत्व को मिटाने वाले स्वयं मिट जाते हैं, इतिहास इस बात का साक्षी है।

सती भगवती

औरंगजेब का शासनकाल अपने अत्याचारों के लिये बदनाम है। यथा राजा, तथा प्रजा। सभी मुसलमान सूबेदार हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार किया करते थे। बिहार की घटना है—किसी जिले का शासक मिर्जा नाव में बैठकर गङ्गा में घूमने निकला था। उन दिनों मुसलमान शासकों के घूमने का अर्थ होता था—प्रजा को लूटना, सुन्दरी कन्याओं का अपहरण करना और धार्मिक स्थानों को नष्ट करना। इस प्रकार का घूमना बहुत दिनों तक चला करता था। उस समय प्रजा में आतङ्क फैल जाता, जब कोई शासक घूमने निकलता। गङ्गा के घाट पर मिर्जा की नाव लगी। पास में ही स्नान करती एक परम सुन्दरी कन्या पर उसकी दृष्टि पड़ी। मिर्जा के बहुत-सी बेगमें थीं, वह वृद्ध भी हो चला था; परन्तु कामियों की

वासना परितृप्त होना जानती ही नहीं। वह कुमारी नौका देखकर सम्भवतः कुछ डरी। स्नान करके शीघ्रता-पूर्वक चली गयी। मिर्जा के सेवकों ने दूसरे स्नान करने वालों से पूछकर बताया कि 'वह गांव के ठाकुर होरिलसिंह की कुमारी बहन भगवती है।' आदमी भेजे गये। होरिलसिंह आज्ञा पाकर उपस्थित हुए।

'ठाकुर साहब! मैंने अभी आपकी बहन को स्नान करते समय देखा है। ऐसी खूबरू इस तरह तकलीफ पाने लायक नहीं। वह तो बेगम होने लायक है। मैं आपको पाँच हजार अशर्फियाँ दूँगा और आपकी जागीर बढ़ा दी जायगी। बड़ा एहसानमन्द होऊँगा। अपनी बहन आप मुझे दे दीजिये!' मिर्जा साहब ने कहा।

'लात मारता हूँ तेरी जागीर और तेरी सोने की थैलियों पर। खबरदार! फिर ऐसी बात जबान से निकाली तो सिर जमीन चूमता होगा।' राजपूत के नेत्र अंगारे उगलने लगे। हाथ तलवार की मूँठ पर जम गया। भय के मारे मिर्जा पीछे हट गया। इसी समय संकेत पाकर उसके सिपाहियों ने पीछे से होरिलसिंह को पकड़ लिया।

'अच्छा, तो तुम सीधे न मानोगे? बंद कर दो बदमाश को।' सिंह को बन्दी देखकर मिर्जा गरजे। बेचारा राजपूत नौका के बन्दीघर में हाथ-पैर बांध कर डाल दिया गया।

समाचार होरिलसिंह के घर पहुँचा। उनकी पत्नी अत्यन्त

दुखी हुई। शोकावेग में ननद पर उबल पड़ी—'तू बड़ी अभागिनी है। तेरे ही कारण मेरे पतिदेव पकड़े गये हैं। पता नहीं अब उनकी क्या दशा है। तेरा यह रूप जला देने योग्य है। इतनी बड़ी हो गयी, पर घर में स्नान करते बनता ही नहीं। ले, अब तो तेरा सन्तोष हुआ ?'

भगवती ने धैर्य पूर्वक कहा—'भाभी ! शोक मत करो। मैं अभी भैया को छुड़ाकर भेज देती हूँ।'

पति के शोक में निमग्न स्त्री ने समझा ही नहीं कि उसकी ननद क्या करने जा रही है। भगवती सीधे घाट पर आयी। उसने झुक कर मिर्जा को आदाब करके कहा—'नाहक मेरे लिये जनाब ने यह तूमार खड़ा किया है। मेरे लिये इससे अच्छी किस्मत क्या होगी कि मैं बेगम बनने जा रही हूँ। मेरे भाई-को छोड़ दीजिये। मैं नाव से सफर करने में डरती हूँ। खूब-सूरत पालकी मँगाइये। मेरे लिये कीमती जेवर और साड़ी मँगाइये। बेगम होकर मैं इस हालत में हर्गिज नहीं जाऊँगी।'

होरिलसिंह छोड़ दिये गये। आभूषण तथा कपड़े आने में कितनी देर। मन मारकर भगवती ने सब को पहना और पालकी में बैठ गयी। मार्ग में बड़ा सुन्दर सरोवर पड़ता था। वहाँ पहुँचकर उसने कहा कि 'प्यास लगी है।' खुद मिर्जा-साहब दौड़े बधना लेकर। भगवती ने रोका—'आपके महलों में चल कर निकाह हो जाने पर मैं आपका छुआ खाऊँगी और पानी पीऊँगी। अभी मुझे माफ कीजिये। मेरे वालिद ने यह

तालाब बनवाया है। मैं बचपन में इसमें बहुत तैरती रही हूँ।

पता नहीं कब यह देखने को मिले। आखिरी बार मैं खुद इससे पानी पीऊँगी।

किसी के उतारने की अपेक्षा किये बिना ही वह उतर पड़ी। ऊँचे घाट पर पहुँच कर उसने हाथ जोड़ा, 'मा दुर्गे! मेरी रक्षा करना। मेरा शरीर इन म्लेच्छों से न छुआ जाय।' कूद पड़ी वहीं से। देर होते देख मिर्जा अपने आदमियों को लेकर पहुँचे। वहाँ क्या धरा था। अब उनकी समझ में बात आयी। सरोवर में जाल डाला गया। शव का पता नहीं था। समाचार पाकर होरिलसिंह पहुँचे। उन्होंने भी जाल डलवाया। प्राणहीन बहन का शव उसमें देखकर हाथ जोड़कर वे बोले 'भगवती! तू सच-मुच भगवती थी। तूने मेरे कुल की लज्जा रख ली।

वहीं सती के शरीर का दाह हुआ। आज भी वहाँ सती-चौरा है और लोग श्रद्धा से उसकी पूजा करते हैं।

वीरकन्या विद्युल्लता

यह लिखना असङ्गत नहीं होगा कि जिस तरह मध्यकालीन भारतीय राजघरानों की रानियाँ यवनों और म्लेच्छों से अपने सतीत्व की रक्षा के लिये जान हथेली पर लिये रहती थीं, उसी

तरह साधारण गृहस्थों की बहू-बेटियाँ भी अपने देश की रक्षा, अस्तित्व और स्वत्व के लिये प्राणों की बलि देने के लिये सदा उद्यत रहती थीं।

अलाउद्दीन का चित्तौड़-आक्रमण एक इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। चित्तौड़ और रणथम्भोर पर विजय पाने मे यवनाधिपति उस समय अपना गौरव समझते थे। उधर चित्तौड़ पर अलाउद्दीन आक्रमण करने की योजना बना रहा था और इधर राणा के सैनिक भी असावधान नहीं थे। चित्तौड़ के एक नामी सरदार का पुत्र समरसिंह अपनी वीरता और रूप के लिये उस समय बहुत प्रसिद्ध था। चरित्रनायिका विद्युल्लता उसकी प्रियतमा बनने का स्वप्न देख रही थी। विद्युल्लता भी चित्तौड़ के एक वीर सैनिक की कन्या थी। वह चित्तौड़ में सब से अधिक सुन्दरी समझी जाती थी। रूप और सौन्दर्य दोनों उसके जीवन-साथी थे। साथ-ही-साथ वह उदार और सद्गुण-सम्पन्ना भी थी।

अलाउद्दीन के आक्रमण को रोकने के लिये समरसिंह को भी लड़ाई में जाना पड़ा। बहुत दिन बीत गये, वह विद्युल्लता को न देख सका। विद्युल्लता भी उसके वियोग में पीली पड़ती जाती थी, उसका वदन सूख रहा था, वह दीनमलिन की तरह अपने घर के सामने ही बगीचे में बैठी रहती थी। फिर भी वह यह सोचकर संतोष कर लिया करती थी कि उसका भावी पति अपना कर्तव्य कर रहा है।

रात का समय था, चन्द्र देवता अपनी सोलह कलाओं से गगनतल पर विलास कर रहे थे, दूध-सी एक धारा पृथ्वी पर बह चली थी। उस स्वच्छ चाँदनी में युवती ने देखा कि समर उसके पास खड़ा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। समर ने उससे कहा कि 'मैं तुम्हारे पास एक विशेष कार्य के लिये उपस्थित हुआ हूँ।' उसने यह भी कहा कि 'सारे-के-सारे राजपूत सैनिक कुछ ही दिनों में मुसल्मान सेना की क्रोधाग्नि में जलकर स्वाहा हो जायँगे। मैं नहीं चाहता कि प्रेम की पवित्र भावनाओं को कुचलकर समराग्नि में अपने-आपको झोंक दूँ। मेरे लिये तुम्हारा प्रेम स्वर्ग और अपवर्ग है। सेनापति की आँख बचाकर मैं रण से भाग आया हूँ। हम लोगों को अब कहीं दूर चले चलना चाहिये, नहीं तो प्रेम-निधि मिट्टी में मिल जायगी।'

विद्युल्लता का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसने कहा, 'समर! मातृभूमि पर विधर्मियों का आक्रमण हो रहा है, तुम्हारे-ऐसे वीर राजपूत के इन कायरता-पूर्ण शब्दों ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया है। राजपूत-कन्याएँ ऐसे पुरुषों से प्रेम करना या उससे विवाह करना पाप समझती हैं, जो अपने कर्तव्य से विमुख होकर कायरता प्रदर्शन करते हैं। यदि तुम रण में वीरगति पाओगे तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहेगा। माना हमलोग सांसारिक सम्बन्ध में बँध न सकेंगे, किन्तु स्वर्गीय सम्बन्ध तो हम दोनों का अक्षुण्ण ही रहेगा।

वीर बाला के शब्द-बाण उस दुष्ट का पाषाण-हृदय न वेध

सके। अन्त में उसने यवनों से मिलकर चित्तौड़ का सारा

भेद प्रकट कर देना उचित समझा। उसका ऐसा खयाल था कि यवनों की ओर हो जाने से उसकी जान बच जायगी और उसकी प्रियतमा विद्युल्लता भी उसे मिल जायगी। उसने यवन-सेनापति से मिलकर सारे भेद बतला दिये। उसीका परिणाम था कि सैकड़ों बहू-बेटियों, हजारों राजरानियों को पद्मिनी के साथ जौहर-यज्ञ में प्राणों की आहुति देनी पड़ी। उस अधम के पाप ने चित्तौड़ को जलाकर राख कर डाला। इतने बड़े भीषण काण्ड के बाद उसने विद्युल्लता का स्मरण किया। वह चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। उसके साथ सैकड़ों मुसल्मान सैनिक भी थे।

विद्युल्लता को ज्ञात नहीं था कि इतने बड़े अग्निकाण्ड की जड़ समरसिंह है। वह समर को देखकर हर्ष से नाच उठी। परन्तु मुसल्मान सैनिकों ने उसे बंदी नहीं बनाया था। वह समझ गयी कि पापी समर ने देश के साथ विश्वासघात किया है। ज्यों ही उस अधम ने उसे 'प्रिये' कहकर पुकारना चाहा, उसके पापी अधरों ने उसके अधरामृत का पान करना चाहा, त्यों ही उस सिंहिनी ने उससे कहा कि 'अधम! मेरे शरीर को छूकर अपवित्र करने से अच्छा तो यह होगा कि तुम चुल्लूभर पानी में डूब मरो। राजपूत-रमणियों के हृदय में कायरों के लिये स्थान नहीं है।'

विद्युल्लता ने कमर से कटार निकालकर अपनी छाती में भोंक ली। समर ने उसे पकड़ना चाहा, लेकिन वह उस पापी के हाथों से अपवित्र होने के पहले ही स्वर्ग में पहुँच चुकी थी।

राष्ट्र की बलिवेदी पर प्राणों की आहुति देकर विद्युल्लता ने चित्तौड़ के इतिहास में अपनी कीर्ति अमिट कर ली।

महारानी लक्ष्मीबाई

महारानी लक्ष्मीबाई स्वाधीनता की लक्ष्मी थी। देश, धर्म और स्वतन्त्रता के लिये इस वीराङ्गना ने आत्मबलिदान किया है। वह भारतीय स्वाधीनता की देवी थी; झाँसी का किला स्वराज्य-मन्दिर है, स्वतन्त्र जाति की बलिवेदी का भव्य महल है। कौन ऐसा हिन्दुस्तानी होगा, जिसकी नसों में इस वीर-भूमि को देखकर बिजली न दौड़ जाय। इस पवित्र मन्दिर के कण-कण में स्वाधीनता का इतिहास छिपा है, जिसे पढ़ने के लिये वीर जाति ही समर्थ कही जा सकती है। किले की राज्यलक्ष्मी की अमर आत्मा अब भी सारे वातावरण को अपने सिंहनाद से कम्पायमान करती हुई कहती-सी जान पड़ती है, दीखती है—'झाँसी मेरी है, अपनी झाँसी किसी को नहीं दूँगी। जो लेना चाहे, आये; मैं उसे देख लूँगी।' यह था उसकी स्वाधीनता का मूल मन्त्र, यह था उसके स्वाभिमान का परिचय!

कौन जानता था कि मोरोपन्त ताम्बे और सौभाग्यवती

भागीरथीबाई की लाड़ली सन्तान भारतीय स्वाधीनता के रण में अडिग चरण रखकर अपने-आपको अमर कर लेगी? कौन जानता था कि विठूर में नानासाहब के साथ-साथ खेलने वाली बालिका मनू बाई गङ्गाधरराव की राजरानी होगी? इतिहास को कहाँ पता था कि अभिनव दुर्गावती की कहानी से उसका अङ्ग-अङ्ग रँग उठेगा? मनू बाई की बाल्यावस्था पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर विठूर में ही बीती थी, वह सोने की थाली में प्रत्येक साल घी के दीप जलाकर नानासाहब-सरीखे स्वतन्त्र भारतीय राजकुमार की आरती उतारती और भैया-दूज का उत्सव मनाती थी। दीपकों की चमक और सुनहले आलोक में भारत का स्वर्णयुग उतर आया करता था।

इस वीराङ्गना का जन्म कार्तिक कृष्ण १४ संवत् १८११ में हुआ था। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि संसार के इतिहास में इसका नाम सदा के लिये अमर रहेगा। मनू का बाल्यकाल बालक नानासाहब के ही साथ बीता। बाजीराव पेशवा ने इन दोनों की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया था। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार लिखना-पढ़ना, शस्त्र-अस्त्र-चलाना, घोड़े पर चढ़ना इस वीर-कन्या ने थोड़े दिनों में ही सीख लिया था। झाँसी में उस समय गङ्गाधरराव राजा था। लक्ष्मीबाई का विवाह उन्हीं से कर दिया गया। झाँसी की रानी होने के बाद उसे कभी विठूर जाने का सौभाग्य नहीं मिला। रानी निःसन्तान थी। आनन्दराव दामोदर नामक

एक बालक को गोद लेने की बात पक्की हुई और गवर्नर-जनरल से स्वीकृति के लिये लिखा-पढ़ी की गयी कि दामोदर नामक बालक गोद ले लिया गया है। झाँसी का राज्य तो पहले से ही अंग्रेजों का विश्वासपात्र होता चला आया था ; लेकिन इस समय डलहौसी भारत के मान-चित्र को लाल रंग से रँगने की चिन्ता में चूर था। रानी लक्ष्मीबाई की बात अनसुनी कर दी गयी। इतिहासकार केनो ने लिखा है कि रानी का प्रयत्न व्यर्थ ही गया। झाँसी राज्य गङ्गाधर की मृत्यु के बाद अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और रानी तथा उसके दत्तक पुत्र के गुजारे के लिये थोड़ी-सी पेन्शन बाँध दी गयी।

विधवा होने पर महारानी का जीवन एक पवित्र हिन्दू नारी की तरह संयमित और नियमित हो गया। उसने अपना सारा ध्यान जप-तप-नियम, पूजा-पाठ और ईश्वरभक्ति में लगाया। नित्यकर्म से निवृत्त होकर वह तुलसी-पूजन करती और दान-धर्म आदि में व्यस्त रहती थी। महाभारत-भागवत-पुराणादि सुनने में उसकी बड़ी रुचि थी। उसका जीवन पूर्ण वैराग्यमय हो गया।

कुछ दिनों के बाद रानी ने धूम-धाम से अपने दत्तक पुत्र दामोदर का उपनयन-संस्कार किया, इसके लिये दत्तक के नाम जमा सात लाख रुपये में से एक लाख सरकार ने मंजूर किया था। राज्य हड़प लिये जाने पर भी अंग्रेजों के प्रति रानी का व्यवहार उत्तम ही रहा, उसने मन में कभी द्वेष या वैमनस्य के

भाव न उठने दिये। फिर भी होनहार तो होकर ही रहता है। गोरों के सिर पर विनाश का भूत बैठ गया था, वे तो बहुत दूर का स्वप्न देख रहे थे। फिर भी नानासाहव, झाँसी की रानी, ताँत्या टोपे आदि के रहते उनका मनोरथ सिद्ध होना यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य था। डलहौसी की राज्य हड़प लेने की नीति से भारत के स्वतन्त्र शासकों को पता चल गया कि किसी भी हालत में गोरों और फिरङ्गियों का विश्वास नहीं किया जा सकता। सब-के-सब असन्तुष्ट थे। बगावत की तैयारी भीतर-ही-भीतर होने लगी। शिवाजी के वंशज और स्वाधीन भारतीय शासक नहीं चाहते थे कि कासिमबाजार और सूरत में घूम-घूम कर खिलौने बेचने वाले सौदागर हमें अपने हाथों का खिलौना बना लें; उन्होंने इस शरारत की सजा देने की विधि सोची। इन विदेशियों को निकाल बाहर करने के लिये जोरदार प्रयत्न आरम्भ हो गया। बारूद में आग लगने भर की देर थी। अंग्रेजी सेना के हिन्दुस्तानी सैनिकों में असन्तोष बढ़ गया था और उनके हृदयों में विद्रोह की आग सुलग रही थी। रानी लक्ष्मीबाई को इस नाटक में बहुत बड़ा काम करना था। उसे स्वाधीनता के इस महायज्ञ में बड़े-से-बड़ा आत्मत्याग और बलिदान करना था।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि रानी अंग्रेजों को निकाल बाहर करना चाहती थी। यह तो उसके लिये स्वाभाविक ही था; क्योंकि, वह नानासाहब के साथ शिवाजी के राज्याधि-

कारी की राजधानी बिठूर के स्वतन्त्र वातावरण में पली थी। परन्तु कुछ विद्रोही सरदारों और सेनापतियों की नीति और कार्य-प्रणाली उसे पसंद नहीं थी। विद्रोहियों के सामने सामूहिक रूप से तीन लक्ष्य थे ; उनका एक वर्ग देश-प्रेम से पागल होकर नन्दकुमार के हत्यारों को, वारेन हेस्टिंग्ज के देश वालों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल कर हिन्दुस्तान में अपना खोया राज्य या स्वराज्य स्थापित करना चाहता था ; इस वर्ग में नानासाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, कुँवरसिंह, बाँदे का नवाब, ताँत्या टोपे और अन्तिम मुगल-अधिपति बहादुरशाह थे। दूसरा वर्ग स्वराज्य-स्थापना के साथ-ही-साथ केवल अंग्रेजों को ही नहीं, उनके हिन्दुस्तानी सहायकों को भी मार काटकर तथा उनका राज्य हड़प कर भारत में भारतीयों का आधिपत्य चाहता था ; इस वर्ग ने कुछ समझदारी से काम लिया। तीसरा वर्ग कुछ ऐसे शासकों, सैनिकों और लुटेरों का था, जो केवल लूट-पाट करना चाहता था और भारतीय स्वातन्त्रय-आन्दोलन से लाभ उठाकर अपने-आपको दृढ़ और समृद्धिशाली बनाने के फेर में था। इस वर्ग की हार-जीत का महत्त्व कुछ भी नहीं था ; जिसकी शक्ति बढ़ती देखता था, उसीकी ओर हो जाता था। इस वर्ग ने भारतीय जन-आन्दोलन की बड़ी हानि की। इसी वर्ग के एक सरदार नत्थेखाँ ने झाँसी के किले को घेरकर रानी से तीन लाख रुपये माँगे। वह रुपये कहाँ से लाती। अंग्रेजों ने राज्य की सम्पत्ति पर पहले से हाथ साफ कर दिया था, फिर भी

अपने मान और गौरव की रक्षा के लिये अपने सारे कीमती आभूषण उसने नत्थेखाँ के हाथ में रख दिये ; बाद में यह दुष्ट अंग्रेजों से मिल गया और उसने रानी पर विद्रोही होने का लाञ्छन लगाया। अंग्रेज तो रानी से सशङ्कित थे ही। झाँसी के दमन की तैयारी होने लगी। लक्ष्मी रणचण्डी बन गयी। विद्रोह का नया अध्याय आरम्भ हो गया। झाँसी के वीर सैनिक 'हर हर महादेव' का सिंहनाद कर रण में कूद पड़े।

झाँसी की जनता ने नंगी तलवार चूमकर रानी का अभिवादन किया। वह किले की ऊपरी छत पर खड़ी थी। उस रणभवानी के सिर पर लाल रंग की चमकदार टोपी थी, जिसमें मोतियों की लड़ी और रत्न जड़े थे। गले में हीरे का हार था। कमरबंद में 'मश्क' बने हुए दो पिस्तौल थे, जिन पर चाँदी और सोने के पत्तर जड़े थे। कमरबंद में ज़हर से बुता हुआ पेशकब्ज था। लाल साड़ी पहनकर वह रणाङ्गना नंगी तलवार लपलपाती हुई कह रही थी, 'झाँसी मेरी है, मैं किसी को न दूँगी।' प्रजा ने कहा, 'माता दुर्गे! तुम निश्चिन्त रहो, हम झाँसी पर किसी विदेशी का अधिकार न होने देंगे।' सारा-का-सारा वातावरण 'हर हर महादेव' के जयनाद से गूँज उठा। डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन द्वितीय भाग में लिखा है—The lightening of Jhansi declared, 'Give up my Jhansi? I will not! Let him try to take who dares!! Meri Jhansi doongi nahin!!'

खानदेश का रहने वाला सदाशिव नारायण महाराणी के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, वह अंग्रेजों का कृपापात्र था। नत्थेखां ने अंग्रेजों से मिलकर रानी पर हमला कर दिया। महारानी क्रोध से लाल हो गयी। उसने कहला भेजा—'मैं हिन्दू नारी हूँ। रणाङ्गण में शत्रु की ललकार का उत्तमता के साथ स्वागत करना जानती हूँ। आक्रमण का उत्तर रणभूमि में मेरी तलवार देगी।' विकट युद्ध हुआ। नत्थे ने अंग्रेजों से सहायता माँगी। पहले तो वह दुष्ट विद्रोहियों का सरदार था। महारानी अवला नहीं, सवला थी; उसके दमन के लिये इंग्लेण्ड से १६ सितम्बर १८५७ ई० को सेनापति सर ह्यू रोज आ पहुँचा और अचानक ही एक दिन सात बजे सवेरे उसने झाँसी पर हमला बोल दिया। उसने रानी के पास कहला भेजा कि 'आप किले सहित अपने-आपको समर्पण कर दें।' रानी सिंहिनी की तरह गरज उठी; उसने पत्र लिखवाया कि 'मैं आत्मसमर्पण को अपना प्रत्यक्ष अपमान समझती हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि हिन्दू-नारी, जो हिन्दू-संस्कृति और राष्ट्रीयता की अनुगामिनी है, किसी पुरुष को आत्मसमर्पण नहीं कर सकती।' कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस उत्तर से अंग्रेज-सेना कुपित हो उठी, 'अंग्रेजों ने झाँसी में गोवध करना आरम्भ कर दिया।' महाराजा शिवाजी के वंश को पवित्र करने वाली इस महाराष्ट्र-रानी ने खुले-आम विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। झाँसी की रानी ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये और सर ह्यू रोज के दाँत रँग दिये,

जिसने रानी की प्रशंसा विद्रोहियों की सब से कुशल सेनापति कह कर की है। उसने कहा था—'She was the bravest and best man on the side of the mutineers.' रानी ने किले पर गरगज, कड़क बिजली, घनगर्ज, भवानीशंकर तोपें रखवा दीं। अंग्रेजों ने झाँसी के किले पर गोले बरसाना आरम्भ किया। रानी ने उन्हें मुँहतोड़ जवाब दिया। वह स्वयं घोड़े पर सवार होकर और हाथ में नंगी तलवार लेकर अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने लगी। फिरंगी रानी की वीरता से दंग हो गये। अंग्रेजी सेना में घनगर्ज तोप की मार से हाहाकार मच गया। वह पीछे हटने लगी। रानी ने अपने तोपची गुलाम गौसखाँ को शाबाशी दी और पुरस्कार में एक जोड़ा सोने का कड़ा दे डाला। वह तो देश की स्वाधीनता के नाम पर अपने प्राणों का पुरस्कार तक देने के लिये तैयार थी। वह आत्मबलिदान की देवी थी। दो-ही-चार दिनों के बाद रानी को तांत्या टोपे की हार का समाचार मिला। वह कुछ खिन्न हो उठी। झाँसी पर भी अंग्रेजों ने खून-पसीना एक करने के बाद विजय पायी। रानी दुखी हुई, फिर भी उस वीर रमणी ने उनका मूलोच्छेदन करने का व्रत ले ही लिया। रानी अभी किले में ही थी; उसने कहा, 'यह असम्भव है कि मेरे जीते जी झाँसी अंग्रेजों की हो जाय। जब तक हाथ में तलवार है, तन में प्राण है, झाँसी मेरी ही रहेगी।' वह सैनिकों को लेकर किले के नीचे उतरी। अंग्रेजों ने धोखे से वार करना आरम्भ किया,

सारे किले में भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हो उठी। अंग्रेजों ने

विशाल किले को श्मशान तुल्य बनाकर उसमें आग लगा दी और इतिहास के पृष्ठों पर अपनी कायरतामूलक वीरता का अमिट चित्र खींच दिया। रानी ने अपने शरीर को गोले-बारूद की कोठरी में आग लगा कर जला देना चाहा, लेकिन सरदारों के बहुत कहने-सुनने पर उन्होंने बाहर निकल जाना ही उचित समझा। सोने की चिड़िया निकल गयी, दुश्मनों ने पीछा किया। रानी ग्वालियर रियासत के भांडेर नामक स्थान पर पहुँच गयी। लेफ्टिनेण्ट वाकर पीछा करता हुआ आ पहुँचा। रानी सूर्य-रश्मि की तरह तलवार चमकाती हुई आगे बढ़ गयी, महामाया काली की तरह उसने पीछा करनेवालों को मौत के घाट उतार दिया और चौबीस घण्टों तक घोड़े की पीठ पर रहकर एक सौ दो मील का लंबा रास्ता पार कर लिया। कालपी पहुँचकर उसने स्वतन्त्रता की ज्वाला सुलगा दी। उत्तर भारत के मुख्य-मुख्य विद्रोहियों की बैठक हुई। नानासाहव से यहीं रानी का मिलन हुआ ; उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मेरी तलवार शत्रुओं के विनाश और हिन्दुस्तान की मर्यादा रखने के लिये सदा उठी रहेगी।' नानासाहव रानी की बात सुनकर गद गद हो गया। कालपी में अंग्रेजी फौज विजयी हुई। पेशवा की छावनी से महारानी बाहर निकल गयी।

विद्रोही ग्वालियर की ओर बढ़े। जयाजीराव सिन्धिया अंग्रेजों का बहुत बड़ा मित्र और सहायक था। ग्वालियर की प्रजा ने विद्रोह कर दिया, वह और चाहती थी कि राजा अंग्रेजों

से लड़े, महारानी की वीरता से नानासाहब ने ग्वालियर के किले पर अधिकार कर लिया ; लेकिन दिनकरराव, जो ग्वालियर का दीवान था, अंग्रेजों से मिल गया और अन्त में वहाँ भी दुर्भाग्य ने विद्रोहियों का साथ दिया। रानी ने जीवन-संग्राम की तैयारी की। वह रत्नजटित नंगी कृपाण कमर में लटकाये हुए रण-धुरन्धर सेनानायक की तरह अपने सैनिकों में नया जीवन भरने लगी। इतने में कर्नल स्मिथ की सेना ने रानी पर आक्रमण किया। महारानी ने जी तोड़कर सामना किया। इतना भीषण रण रानी को और पहले कभी नहीं करना पड़ा था। विदेशियों को हिन्दुस्तान के बाहर निकालने का यह अन्तिम जोरदार प्रयत्न था। रानी चारों ओर से घिर गयी। परन्तु वह शत्रुओं का व्यूह तोड़कर आगे बढ़ गयी। उसने जान की बाजी लगा दी, 'मानो दैत्यदलनि दरेरे देति दुरगा' की सत्यता चरितार्थ हो उठी। वह पहले से भी अधिक प्रचण्ड वेग से शत्रुओं पर टूट पड़ी और विकट मार करती हुई अपने अङ्ग-रक्षकों के साथ शत्रुओं के घेरे से पार हो गयी।

रानी वायु की तरह बढ़ती जा रही थी, परन्तु कराल काल उस महाकाली का पीछा कर रहा था। दो अंग्रेज सैनिक पीछे-पीछे वेग से चले आ रहे थे। रास्ते में एक नाला पड़ा, रानी का घोड़ा उसे पार न कर सका। गङ्गाधर के राजमहल की जीवन-सहचरी उस नीरव स्थान में असहाय हो गयी। वह ज़ीवन के अन्तिम क्षणों की प्रतीक्षा करने लगी। उसने देखा—

दो सैनिक वढ़े आ रहे हैं। उस सवला ने, जिसने झाँसी के किले में बैठकर असंख्य गोरों को स्वर्ग भेज दिया, केवल दो साधारण शत्रुओं पर वार करना अपना अपमान समझा। फिर भी उसे चिन्ता थी कि म्लेच्छ पवित्र शरीर पर हाथ न लगा दें। इसलिये उसने प्यासी तलवार सम्हाल ली, जमकर युद्ध हुआ; इतने में एक सैनिक ने रानी के सिर पर पीछे से आघात किया, दूसरे ने आगे से किया, महाकाली की साड़ी खून से लथपथ हो गयी। रानी की आँखों से चिनगारियाँ फूटने लगीं। उसने कपालिनी की तरह उग्र रूप धारण कर लिया; उसकी तलवार उस दुष्ट शत्रु के मस्तक पर टूट पड़ी, जिसने संगीन चलायी थी। उसके दो टुकड़े हो गये, दूसरा शत्रु भी धराशायी हुआ। महामाया लक्ष्मीवाई ने दोनों के शव पर दोंनों पैर रख दिये; ऐसा लगता था मानो काली के पैरों के तले शुम्भ और निशुम्भ दवे पड़े हैं। रणभूमि में खून की धारा वहने लगी, नाले का पानी लाल हो गया। रानी निस्तेज होने लगी, उसके अङ्ग-अङ्ग से खून के झरने वह रहे थे। रानी के अन्तिम वाक्य यही थे कि 'मेरी मृत्यु एक वीराङ्गना की तरह हुई। मुझे ये म्लेच्छ न जीवितावस्था में पकड़ सके, न मेरे मरने के उपरान्त ही पकड़ने पाये।'

रानी के मुख पर अद्भुत आनन्द था। उसने आँखें मूँद लीं।

झाँसी की पवित्र भूमि पर रानी का किला आकाश चूमता-सा कह रहा है कि 'समय के आघात से मेरा तन जर्जर और

काला भले ही हो जाय, फिर भी मेरा हृदय महारानी लक्ष्मी के उज्ज्वल यश से सदा शुभ्र—आलोकित रहेगा।'

सती नीलदेवी

भारत में ही नहीं, अपितु सारे विश्व में नारी शक्ति समझी गयी है। नारीत्व के इतिहास ने ही वीरता का मुख उज्वल कर रक्खा है। देश, कुल और आत्मसम्मान की रक्षा के लिये नारियों ने समय-समय पर अपने कुसुमवत् जीवन की बलि दे दी है।

कुछ ही दिनों की बात है, पंजाब प्रान्त के नूरपुर राज्य में राजा सूरजदेव की तूती बोल रही थी। उसकी रानी नीलदेवी अपनी सुन्दरता और संगीत-निपुणता के लिये प्रसिद्ध थी। पंजाब उस समय यवन-सेनापति अब्दुलशरीफ खाँ के द्वारा रौंदा जा रहा था। विजय के अनन्तर हिन्दुओं को मुसलमान बना लेना उनकी बहू-बेटियों को धर्मभ्रष्ट कर देना आदि उसकी रणयात्रा का उद्देश्य था। वह बढ़ते-बढ़ते नूरपुर तक आ गया। राजा सूरजदेव ने अपनी छोटी-सी सेना लेकर बड़ी शूरता से उसका सामना किया, यवनाधिपति की हार-पर-हार होने लगी।

पर अन्त में उसने एक दिन धोखे से राजा को कैद कर पिंजरे में डाल दिया।

राजपूतों में खलबली मच गयी। राजकुमार सोमदेव ने प्रण कर लिया कि या तो वह अपनी वीर सेना के साथ वीर-गति को प्राप्त करेगा या यवन-सेना को धूलि में मिला देगा। पतिव्रता नीलदेवी ने उसे ऐसा करने से रोका और 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति से काम निकालना चाहा। उसने अपनी संगीत-कला का उपयोग किया। एक नाचनेवाली का भेष बना-कर और साजिंदों के रूप में सैनिकों को साथ लेकर वह यवनसेनापति के खेमे में पहुँच गयी। उसने चोली के भीतर दुधारी कटार रख ली थी। मदिरापान चल रहा था, यवन नशे में झूम रहे थे। कला की साक्षात् सजीव मूर्ति ने यवन सेनापति अब्दुलशरीफ का चित्त काम-वासना से चञ्चल कर दिया। वह उन्मत्त हो उठा। रानी नाचने लगी। वह गाती जाती थी और साथ-ही-साथ खान को प्याले-पर-प्याला शराब भी पिलाती जाती थी। उस मनचले ने अपनी कीमती अँगूठी उतार कर रानी को देनी चाही; परन्तु उस छद्मवेशा करालवदना काली ने यह कहकर लेने से इन्कार कर दिया कि 'सब इनाम एक साथ ले लूँगी।'

पिंजरे में बंद राजा सूरजदेव विस्मित हो उठा। उसे रानी का नाच देखकर बड़ा क्रोध आ रहा था। वह उसे कुलटा समझकर पागल हो उठा। उसे वास्तविकता का कुछ

भी ज्ञान नहीं था। इधर खान की कामज्वाला बढ़ रही थी।

उसने रानी को खींचकर पास बैठा लिया और चुम्बन के लिये ज्यों ही हाथ-पैर डुलाये कि रानी ने कटार निकाल कर उस नराधम की छाती में भोंक दी और फिर उसी रक्तरञ्जित कटार को उसके मुख में डालकर बोली—'पापी ! नीच ! ले, पहले इसका चुम्बन कर ।'

साजिंदे के भेष में आये हुए उन क्षत्रियों ने तबले, सारंगी और सितार पटककर तलवारें निकाल लीं। कुमार सोमदेव ने भी बाहर से हमला कर दिया। राजा पिंजरे के लोह-छड़ तोड़कर बाहर निकल आया और दुश्मनों को यम के हवाले करने लगा। घमासान युद्ध छिड़ गया, पर थोड़ी ही देर में धोखे से एक यवन ने राजा का सिर काट लिया। रानी ने झटपट पति का सिर उठा लिया और शत्रुओं पर प्रहार करती हुई खेमे के बाहर चली आयी।

राजकुमार सोमदेव ने शत्रुओं पर विजय पायी। रानी पुत्र का राजतिलक कर पति का सिर गोद में लेकर चिता में बैठ गयी। नीलदेवी आदर्श सती थी।

अजवादे पुंआर

विक्रम संवत् १६३३ में हल्दीघाटी का विकराल युद्ध हुआ। राजपूतों ने बड़ी वीरता दिखाई। लगातार आठ वर्ष घमासान युद्ध लड़ने के पश्चात जब सैन्य-बल क्षीण हो गया, तब महारानी अजवादे पुंआर ने महाराणाजी से सविनय अरज की कि 'प्राणाधार! पहाड़ियाँ और जंगल ही हमारा राज्य है। उदयपुर कुम्हलनेर आदि के राजमहलों से भी अधिक सुख हमें जंगलों में मिलेगा। स्वाधीनता के सैनिकों के लिये जंगल ही मंगल का स्थान है।' रानी की सद्परामर्श से राणा चल पड़े। समस्त परिवार, सामन्त और सैनिक उनके साथ थे। राणा ने सारे साधन नष्ट करवा दिये, जिससे मुगल उन सामरिक वस्तुओं का उपयोग कर मेवाड़ की स्वाधीनता को जर्जर न कर सके। स्वाधीनता का व्रत बहुत ही कठोर होता है। राणा मेवाड़ की पवित्र भूमि से विदा ले रहे थे, सामने निरजन वन था, रानी ने कहा—'आर्यपुत्र! इसी तरह महाराज रामचन्द्र ने भी तो विधर्मियों और राक्षसों के दमन के लिए चौदह साल तक वनवास किया था।' महाराणा ने रानी की ओर देखा, उनकी आंखों में आनन्द और विषाद जल बनकर उमड़ आया। बाप्पा रावल के वंशधर ने कहा—'प्रिये! जगज्जननी सीता भी तो थीं।'

वीर-दम्पति ने स्वाधीनता का कठिन व्रत लेकर अपनी माता

का दूध सफल कर दिया। उन्होंने पचीस साल तक शक्तिशाली साम्राज्य का सामना किया; मुगलों की छावनियों पर छापा मारना, मुगल-सैनिकों की आंखों से वात की वात में ओझल हो जाना, सब के लिये भोजन सामग्री और फल फूलों का प्रवन्ध करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जंगलों में मारे-मारे फिरना ही उनका काम था। उनका दृढ़ निश्चय था कि वाप्पा रावल का वंशज कभी यवनों और विधर्मियों के सामने मस्तक नहीं झुकायेगा और न उनसे रोटी वेटी का सम्वन्ध ही स्थापित करेगा। महाराणा प्रताप और उनकी राजरानी का वीरतापूर्ण इतिहास मेवाड़ के कण-कण में विद्यमान है। राजरानी कभी नहीं चाहती थी कि जिस राणा सांगा का आतंक हिमालय से रामेश्वर तक छाया हुआ था, उसकी वीर-सन्तान कभी यवनों की दासता स्वीकार करे। राजमहल में पराधीन रहकर दीया वाती करना रानी को असह्य था, वह तो अपने पति के साथ जंगल में रहकर स्वाधीनता-भवानी की आरती उतारने में गौरव का अनुभव करती थी। रानी कहा करती थी कि 'दुःख आयँगे, चले जायँगे; लेकिन मर्यादा तथा धर्म के साथ गौरव और कीर्ति तो अमिट ही रहेंगे।'

महारानी के पैदल पयान पर कवि की उक्ति—

'केशव' स्वधर्म तें स्वतंत्रता को पाठ पढ़ि,
रानीजन चलत पयादी दिन रात है।

कंटक गडात चुभि जात काठे कंकरन,
कञ्ज-पखुरी-से पांव रक्त तें सनात हैं।
महिषी प्रताप मखवानी की तपस्या गुनि,
रानी मघवानी पानी-पानी भइ जात है।
देखि-देखि साहस कों मही सकुची-सी जात,
नीची करि आंखिन को शची सरमात है॥

रानी को बड़ी २ विपत्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा। कई बार तो उसने भोजन तैयार कर पति और कुमार के सामने पत्तल और दोना रखे ही थे कि दुश्मन के सैनिकों के आ जाने की आशंका से उन्हें छोड़ देना पड़ा। उपवास-पर उपवास होते थे, पर स्वाधीनता की मस्ती तो कुछ और ही थी। एक बार रानी ने घास की रोटी तैयार की। राणा की कन्या रोटी खाने ही वाली थी कि जंगली बिलार ने छीन ली। राजमहल में रहने वाली, फूलों की सेज पर सोने वाली सन्तान निरजन वनस्थली में घास की आधी रोटी भी न पा सकी। साध्वी रानी ने लड़की की चीख अनसुनी कर दी। वह नहीं चाहती थी कि इन छोटी-छोटी बातों से पति की चिन्ता बढ़ायी जाय, लेकिन यह छोटी बात नहीं थी। राजकुमारी घास की रोटी भी न खाने पाये, क्या यही स्वाधीनता व्रत था? क्या इसीलिए राणाने मेवाड़ की पवित्र भूमि से विदा लेने का निश्चय किया था? वह नरसिंह देख रहा था—जिस पत्थर-से कलेजे पर

साम्राज्य का फौलादी पंजा आघात न कर सका, जिस पर

पराधीनता की काली लकीर मानसिंह का फूफा अकबर न खींच सका, वह इस दुःख के वज्राघात से चूर-चूर हो गया।

वीर-हृदया रानी ने अपने प्रियतम की मानसिक-स्थिति जान ली ; फिर भी उसे विश्वास था—हिमालय भले ही झुक जाय, सात महासागर भले ही सूख जायँ, लेकिन राणा, जिनकी नसों में पद्मिनी का खून वह रहा है, जिनके अङ्ग-अङ्ग में राणा सांगा की वीरता भरी है, कभी विचलित नहीं होंगे।

राजकुमारी को परोसी हुई घास की रोटी झपटकर वन-विलार के ले जाने पर राजकुमारी की चीख-पुकार सुनकर प्रताप का पत्थर-सा कलेजा चूर-चूर हो गया और उसने बादशाह के पास सन्धि-पत्र लिख भेजा ; यह जगत्प्रसिद्ध बात है। अधिकांश लोगों की मान्यता भी ऐसी ही है, टॉड साहब ने भी ऐसा ही लिखा है। किन्तु वह है किम्वदन्तियों पर आधारित ; इतिहास यहाँ मूक है। महाराणा प्रताप जैसा दृढ़प्रतिज्ञ नरकेशरी प्रतिज्ञा भंग कर दे, यह विश्वास करने योग्य बात नहीं है।

सन्धि-पत्र की बात कैसे फैली, इसका मिलान 'प्रताप-चरित्र' के रचयिता कविवर केशरीसिंहजी बारहठ, सोन्याणा (मेवाड़) निवासी ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है—अमावस्या की निविड़-अन्धकार-पूर्ण रात्रि, मूसलाधार वर्षा हो रही थी। महाराणाजी चेटक पर सवार स्वयम् चारों ओर घूम-घूम कर पहरा दे रहे थे। जब अमरसिंह की तृणशाला के पिछाड़ी पहुँचे, तो अमर-

सिंह और कुमरानी दोनों अपनी झोंपड़ी में मिट्टी की पाल बांध रहे थे। कुटिया के ऊपर से पानी टपक रहा था और नीचे से पर्वतों का पानी बड़े बेग से बह रहा था। ये लोग पाल बांध रहे थे और बेग से बहता हुआ पानी मिट्टी को वहा ले जाता था। परिश्रम करते-करते दोनों तंग आ गये, कुमरानी कहने लगी—'जब राजघराने की यह दशा है तब गरीब किसे कहा जाय ? अर्थात् क्या हम लोगों से भी बढ़कर कोई गरीब है ?' अमरसिंह ने उत्तर दिया—'मैं क्या करूँ, महाराणाजी मानते नहीं। वे सर्वदा स्वाधीनत्ता को प्राणों से बढ़कर समझते हैं।' दम्पति का उक्त वार्तालाप सुनकर महाराणाजी अत्यन्त कोपायमान हुए। सबेरा होते ही दरबार जुड़ा, क्रोध युक्त प्रताप ने अमरसिंह से कहा—'सरदारों सहित तुम तुर्क से सन्धि कर डालो।

बादशाह की घोषणा की हुई थी कि जो कोई व्यक्ति महाराणा के सन्धि करने की खबर लायगा, उसको भारी इनाम दिया जायगा। इनाम-प्राप्ति के लोभ से बादशाह के गुप्तचर, गुप्त रूप से महाराणा के साथ-साथ घूमते रहते थे। उपर्युक्त घटना के समय, गुप्तचर बाहर खड़ा हुआ सुन रहा था। अमरसिंह के प्रति महाराणाजी का सन्धि-आदेश सुनकर वह बड़ा खुश हुआ। अविलम्ब जाकर बादशाह को यह खुश खबर सुनायी। सुनकर बादशाह अधिक आह्लादित हुआ।

बारहठजी का यह मिलान वास्तविक है या कल्पित, यह

तो वे ही जानें, किन्तु यह मिलान महाराणाजी के चरित्र के सर्वथा अनुकूल और उपयुक्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

महाराणा प्रताप ने रात्रि की घटना प्रच्छन्न रखी, इसलिए इस कल्पनातीत सन्धि-आदेश का मर्म कोई भी नहीं समझ सका। उक्त आदेश सुनकर महारानी को बड़ी वेदना हुई। महाराणाजी से पूछने की हिम्मत किसी को नहीं हुई। रानी ने साहस करके प्रश्न किये—

कहे महारानी कहा कठिन कसूर भयो,
असंभव बात तातें आप फरमाई है।
हम तो गॅवार पग-पग पै गुनहगार,
आप सरदार गिरमान गिरमाई हैं
कृपा के अगार नाथ आप रतनाकर हैं,
तुच्छन तें तुच्छ तुच्छ हम तो तलाई हैं।
राजकीय बातन में बाद प्रतिवाद करें,
रावरे समुख कहा चेरी की चलाई है॥

जो पै हम लोकन के कष्ट को विचार भयो,
तोउ यह कल्पना तो सारी निरमूल है।
तुर्क की अधीनता में हमको है फूल शूल,
सुन्दर स्वतन्त्रता में सबे शूल फूल है।
क्यों न कहि देत हैं कृपालु अब मूल बात,
कहे बिनु चलत हमारे उर हूल है।

प्राणनाथ ! कृपा कोप दासी कों कबूल है पै,
ऐसे अविचार की तो रावरी ही भूल है ॥

सीता महरानी कहा कानन तें लौटि आइ,
सैव्या हरिचन्द्र साथ विपत्ति कहा गिनी ?
निद्रा वश नल कों बिछोरि कहा भागि गई ?
रानी दमयंति कहा भई अघ गामिनी ?
धर्म हेत कष्ट सहि जानत तिया न कहा ?
करिबे सुलह बात ताहि तें प्रभु भनी ।
समता न पाऊँ उन देवियों के साथ तोउ,
प्राणनाथ ! रावरी कहाऊँ अरधांगिनी ॥

हम हैं स्वतन्त्र वन फूल है श्रृङ्गार श्रेष्ठ,
याके बिनु हीरन के आभूषण शूल है ।
लाय लगो क्योंन परतन्त्रता के व्यञ्जन पै,
ओोइष ही भोजन हमारे कन्द मूल है ।
केती अन्य भूपन की रानी ह्वै कृपा की पात्र,
स्वर्ग सुख भोगें पै हमारे भाय धूल है ।
तुर्क के अधीन होय रहनो उसूल नाहिं,
कहे राजरानी नर्क रहनो कबूल है ॥

महा कष्ट सागर में तरनी बनेगी क्योंन,
आखिर तो नाथ चेरी घरनी तुम्हारी है ।

रावरी प्रसिद्ध कुल राह ही न जानि सकें
रानी कमधानी रान एती का गँवारी है।
नीकी भाँति जानत हूँ शीशोदन वंश वधु,
जौहर जलन काज विधना सँवारी है।
कैलपुर नाथ आप जानत नहीं हो कहा?
पद्मिनी प्रसिद्ध सास ददिया हमारी है॥

रानी फिर कहने लगीं—'प्राणेश्वर! क्या इसी दिन को देखने के लिए हम लोगों ने स्वाधीनता-व्रत लिया था? जिस समय आपके सन्धि-आदेश की खबर शाही दरबार में पहुँचेगी, आपकी वीरता और साहस की स्तुति करने वाला अकबर क्या कहेगा! शाही जनानखाने से अपने उद्धार की आशा लगाकर बैठी रहने वाली क्षत्राणियों की क्या दशा होगी, क्या आपने इस पर विचार कर लिया? जिस समय वैरम का स्वाभिमानी पुत्र रहीम खान खाना सुनेगा कि आपने सन्धि-आदेश दे दिया है, तो उसकी वाणी अकबर के सामने किस तरह खुलेगी? रहीम नवाब तो आपकी वीरता का गीत गाया करता है। वह तो बाबर के वंशज से कहता है कि दुनियाँ की तमाम वस्तुएँ अस्थिर हैं, सम्पत्ति और राज्य नष्ट हो जायँगे; लेकिन वीर का नाम अमर रहता है। पुत्तु (प्रताप) ने सब कुछ त्याग दिया; लेकिन उसने किसी के सामने कभी मस्तक न झुकाया, उसने अपने कुल की मान मर्यादा अक्षुण्ण रक्खी। क्या आपको

स्मरण नहीं है कि हल्दीघाटी की युद्ध-समाप्ति पर शक्तिसिंह ने अपनी जान की बाजी लगाकर भी 'हो' नीला घोड़ा रा 'असवार' कहकर आपको पुकारा था? यदि वे जानते कि मेवाड़ का सूर्य विपत्तियों के बादल में छिप जायगा, स्वाधीनता पर ग्रहण लग जायगा, तो कभी आपकी सहायता न करते। शाहजादा सलीम उन्हें ताना मारेगा।'

प्रताप ने कहा—'रानी! तुम्हारे पर मेरा तनिक भी सन्देह नहीं है। तुम नाहक ही क्यों मानसिक दुःख कर रही हो। अपनी दोनों की आत्मा एक है, केवल दृश्य रूप में दो हैं।'

राजकुमारी और शूर सामन्तों ने भी प्रश्न किये, जिनके उत्तर में महाराणाजी ने कहा कि तुम लोगों का मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम्हारे कार्य से मुझे पूर्ण सन्तोष है।

राजकुमार अमरसिंह ने जब अपने विषय में कहा, तब महाराणाजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। कुमरानी समझ गयी कि यह निश्चय ही हमारे गत रात्रि के व्याकुल वार्तालाप का फल है, सारा दोष हमारा है। अतः कुमरानी ने राजकुमारी के द्वारा महाराणाजी की सेवा में विनय युक्त अर्ज करवाई कि प्रभो! आपका रूखा मन देखकर मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है। इच्छा होती है कि यदि पृथ्वी फट जाय तो पृथ्वी में समा जाऊँ। कीचड़ में पड़ी हुई मछली की भांति मैं तड़प रही हूँ, मांगने पर भी मोत नहीं मिलती। यह जानकर मुझे अत्यन्त अनुताप हो रहा है कि आपके चित्त-

अशान्ति और मानसिक-पीड़ा का मूल कारण हमारा गत रात्रि का कातर वार्तालाप है। मैं अपना अपराध स्वीकार करती हुई कर-बद्ध क्षमा याचना कर रही हूँ। आप कृपानिधान हैं, दया सिन्धु हैं। आशा है मेरा अपराध क्षमा करने की कृपा करेंगे।

पुत्र-वधू की विनय युक्त-प्रार्थना सुनकर महाराणाजी प्रसन्न हुए, उनका रोष दूर हो गया। अब सन्धि-आदेश का वास्तविक तथ्य सब को ज्ञात हो गया।*

आर्य नारियों ने पति के सुख दुःख में साथ-साथ रहकर सदा हाथ बँटाया है। महारानी सच्चे अर्थ में महाराणा की सहधर्मिणी थी। उसने अर्धाङ्गिनी का कर्त्तव्य-पालन किया।

पतिव्रता राजबाला

भारतीय नारी पति को ही भगवान् समझती है। पति-सेवा और भगवान् की पूजा उसके लिये समान है। राजबाला भी इसी तरह की एक सती साध्वी, पतिव्रता नारी हो गयी है। वह वैशलपुर के ठाकुर की पुत्री थी। केवल सुन्दरता में ही अद्वितीय नहीं थी, धैर्य और वीरता में भी वह अपने ढंग की

* सन्धि-आदेश का विस्तृत वर्णन 'प्रताप चरित्र' में पढ़िये।

एक ही थी। उसकी सगाई रियासत ओमरकोटा की सोड़ा राजधानी के राजा अनाड़सिंह के पुत्र अजीतसिंह से हुई थी। एक बार ऐसा हुआ कि कोटा का राज्यकोप कहीं से आ रहा था। अनाड़सिंह ने छापा मारा, वह पकड़ा गया, राजा ने उसकी जागीर छीन ली। अनाड़सिंह ने चिन्तित होकर प्राण तज दिये। अजीत केवल तेरह साल का था, ठकुरानी ने अनेक कष्ट सहकर उसका लालन-पालन किया। राजबाला के संग अजीत की सगाई उसके पिता के जीते-जी हो चुकी थी। अजीत अनाथ था, उसने वैशलपुर के ठाकुर के पास एक राजपूतानी को यह जानने के लिये भेजी कि वह राजबाला का उसके साथ विवाह कर सकेंगे या नहीं। राजबाला ने विवाह की बात सुनकर उस राजपूतानी से किसी तरह मिलकर कहा, 'राजपूत-कन्या जीवन में एक ही बार पति का चुनाव करती है; चाहे वह अमीर हो चाहे गरीब, इससे उसके प्रेम में या पतिसेवा-व्रत में किसी तरह की कमी नहीं होने पाती।' राजपूत बाला ने आगे कहा—'यदि विवाह होगा तो उन्हींके साथ होगा; नहीं तो मैं प्राण तज दूँगी।'

अजीत के मन पर इन बातों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजबाला के पिता के पास कहला भेजा; परन्तु ठाकुर ने कहा कि 'हम अपनी कन्या का विवाह उसी समय उससे कर सकेंगे जब वह बीस हजार रुपया निर्वाह के लिये इकट्ठा कर ले।'

जैसलमेर के एक सेठ ने इस शर्त पर बीस हजार रुपये दे

दिये कि 'जबतक वह उसे वापस न कर दे, अपनी स्त्री से मिलना-जुलना या उसके पास जाना अधर्म समझे।'

विवाह हो गया। किसी को पता न चल सका कि उसे रुपये किसने दिये। नव-दम्पति को रहने के लिये वैशलपुर में ही एक महल दे दिया गया। जब अजीत के सोने का समय होता तो वह बगल मे नंगी तलवार रख लिया करता था। राजबाला को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। कई दिन इसी तरह बीत गये। बहुत हठ करने पर एक दिन उसने राजबाला को सब बातें बतला दीं। राजबाला ने विनम्र स्वर में निवेदन किया, 'स्वामिन्! आपने बहुत बड़ी कीमत पर मुझे प्राप्त किया है। यहाँ किसी भी तरह बीस हजार रुपये नहीं मिल सकेंगे।' राजबाला ने मर्दाना भेष धारण किया। दोनों साले-बहनोई बनकर निकल पड़े। किसी को कानों-कान पता न चला कि वे किधर गये।

दोनों ने उदयपुर के राणा के यहाँ नौकरी कर ली। परन्तु बीस हजार रुपये की चिन्ता उन्हें रात-दिन सताया करती थी। दोनों की वीरता की धाक काफी दूर तक फैल गयी थी। राजबाला ने अपना नाम गुलाबसिंह रख लिया था। राणा गुलाबसिंह के वीरोचित सौन्दर्य और धैर्य पर मुग्ध था। एक बार गुलाबसिंह ने एक शेर को नंगी तलवार के एक ही वार से मार डाला। राणा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपना अङ्गरक्षक नियुक्त किया। गुलाबसिंह के मुख पर एक वेदना छिपी

रहती थी, वह बहुत बड़ी चिन्ता के भार से दबा जा रहा था।

अन्त में राणा ने राजमहिषी के संकेत से इस बात का पता लगा ही लिया कि गुलाबसिंह कौन है। उन्हें अजीतसिंह से जब सारी बातों का पता चला, तब उन्होंने दोनों के दाम्पत्य-प्रेम और कड़ी-से-कड़ी विरह-साधना की बड़ी सराहना की।' राणा ने अजीत को बीस हजार रुपये दिये। वह राजबाला को पुत्री कहकर पुकारते थे। मेवाड़ के लोग उसे 'प्राणरक्षक देवी' कहा करते थे। उसकी पतिभक्ति सराहनीय और अनुकरणीय है।

वीराङ्गना भीमाबाई होल्कर

महारानी अहल्याबाई के दत्तक पुत्र तुकोजीराव के चार पुत्र थे। इन चारों में यशवंतराव होल्कर ने इतिहास में ख्याति प्राप्त की। तुकोजी की मृत्यु के पश्चात् यशवंतराव राज्य के अधिकारी हुए। अनेक बार यशवंतराव का सिन्धिया, पेशवा एवं अंग्रेजों से संग्राम हुआ। सन् १८०४ में चम्बल नदी के समीप कर्नल मोन्सुन साहब को उन्होंने ऐसी पराजय दी कि कर्नल को बुरी तरह भागना पड़ा। इन्हीं यशवंतराव की पुत्री भीमाबाई थीं। पिता ने बचपन से ही उन्हें घोड़े की सवारी तथा अस्त्रचालन की विद्या सिखायी थी। पिता की वीरता, समयसूचकता तथा, साहस भीमादेवी को प्राप्त हुए थे। मराठी तो उनकी मातृभाषा

थी ही, पिता से उन्होंने फारसी का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

यशवंन्तराव के समय में ही अपने सौन्दर्य के कारण तुलसी-बाई नामक एक दासी का होल्कर महाराज के मन पर और साथ ही राजभवन पर भी अधिकार हो गया था। होल्कर की मृत्यु-पर इसी दासी ने राज्य पर अधिकार किया। उसने एक दत्तक पुत्र भी लिया था। दासी अत्यन्त अहंकारिणी थी। सभी उसके द्वारा उत्पीड़ित हो रहे थे। भीमाबाई उस समय पति-गृह में थीं।

भीमाबाई को समाचार मिला, पिता के राज्य की अव्यवस्थित दशा से उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उनके पति का देहान्त हो गया था। उन्होंने कर्नल माल्कम से कहा—'जान पड़ता है कि होल्कर राज्य एवं होल्कर-कुटुम्ब का अन्त समीप है। इस समय इस परिवार के महान् गौरव की रक्षा करने वाला मेरे अतिरिक्त कोई रहा नहीं। मैं असहाय विधवा हूँ। मेरे कोई पुत्र भी नहीं है। समस्त प्रपञ्चों से पृथक् होकर मुझे भगवान् का भजन करना चाहिये। फिर भी इस कठोर विपत्ति के समय पितृकुल के सम्मान की रक्षा के लिये मुझे राज्यकार्य में हाथ डालना होगा और राज्य का संरक्षण करना होगा।'

सन् १८१७ में महीदपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध होल्कर सेना का भाग्य ने साथ नहीं दिया। भीमाबाई पराजय स्वीकार करने वाली स्त्री नहीं थीं। उन्होंने थोड़ी सेना संगठित कर ली।

उनका निवास पहाड़ों मे बना। छत्रपति शिवाजी का अनुकरण

करके उन्होंने छापा मारना प्रारम्भ किया। अंग्रेजी खजाने, चौकियाँ तथा सामग्री रखने के स्थान लूटे जाने लगे।

सर माल्कम बहुत बड़ी सेना के साथ भीमाबाई के निवास के अन्वेषण में निकले थे। उन्होंने देखा कि जंगल में समीप से ही भीमाबाई घोड़े पर चढ़ी जा रही हैं। सर माल्कम ने उन्हें जीवित पकड़ने का विचार किया। इस से अच्छा अवसर मिलना कठिन था। भीमाबाई के साथ केवल एक ही घुड़सवार सैनिक था। माल्कम के सैनिकों ने घेरा डालना प्रारम्भ किया। भीमाबाई का साथी सैनिक आदेश पाकर घेरा पूरा होने से पहले भाग गया। वह वीराङ्गना स्थिर खड़ी रही।

घेरा पूरा हो गया। सैनिकों ने समझा कि आज उन्होंने इस आफत की पुतली महाराष्ट्र वीराङ्गना को पकड़ लिया। घेरा छोटा होता गया। सहसा धीरे-धीरे भीमाबाई का घोड़ा सर माल्कम की ओर बढ़ा। सब ने समझा कि विवश होकर वे आत्मसमर्पण करने जा रही हैं। घुड़सवार सैनिकों की अटूट पंक्ति चारों ओर उन्हें घेर चुकी थी। घोड़ा ठीक माल्कम के सम्मुख पहुँचा। एक एड़ लगी और ठीक सेनापति सर माल्कम के सिर के ऊपर से वह महाराष्ट्र अश्व अपनी स्वामिनी को लेकर घेरे से बाहर हो गया। अब दौड़-धूप और बंदूकों की गोलियाँ व्यर्थ थीं। अंग्रेजी घोड़े उस महाराष्ट्र घोड़े-के समान नालों को कूदते, पत्थरों पर उछलते, झाड़ियों को चीरते जाने में असमर्थ थे।

एक पूरी सेना को आपने धैर्य, साहस एवं कौशल से अकेले छकाकर वह गौरवमयी नारी कहाँ गयीं ? उनका क्या हुआ ? इतिहास इस सम्बन्ध में मूक है।

सती गोरा की रानी

अलाउद्दीन ने गद्दी पर बैठते ही सिकंदर द्वितीय बनने की इच्छा की, लेकिन दिल्ली के कोतवाल अलाउलमुल्क के समझाने पर उसने विश्व-विजय का खयाल छोड़ दिया। चित्तौड़ और रणथम्भोर उसके आक्रमण के लक्ष्य बने। यह एक इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह को धोखे से कैद कर राजपूतों से पद्मिनी की माँग की थी और गोरा तथा बादल ने उसे मुँहतोड़ जवाब दिया। शाही सेना का राजपूतों ने जमकर सामना किया, गोरा वीरगति को प्राप्त हुआ ; लेकिन राणा सुरक्षित अवस्था में चित्तौड़ पहुँचा दिये गये।

गोरा की रानी बड़ी वीरहृदया थी। उसके सतीत्व का बखान करते हुए 'मेवाड़नी जाहोजलाली' का लेखक लिखता है कि 'शूर सती ! तुम्हारा जितना भी बखान किया जाय, थोड़ा है।' बादल यवनों को खदेड़ कर घर वापस आया। खुमान-रासो में इस साके का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। बादल

उस समय केवल बारह सालका लड़का था; परन्तु उसने जिस
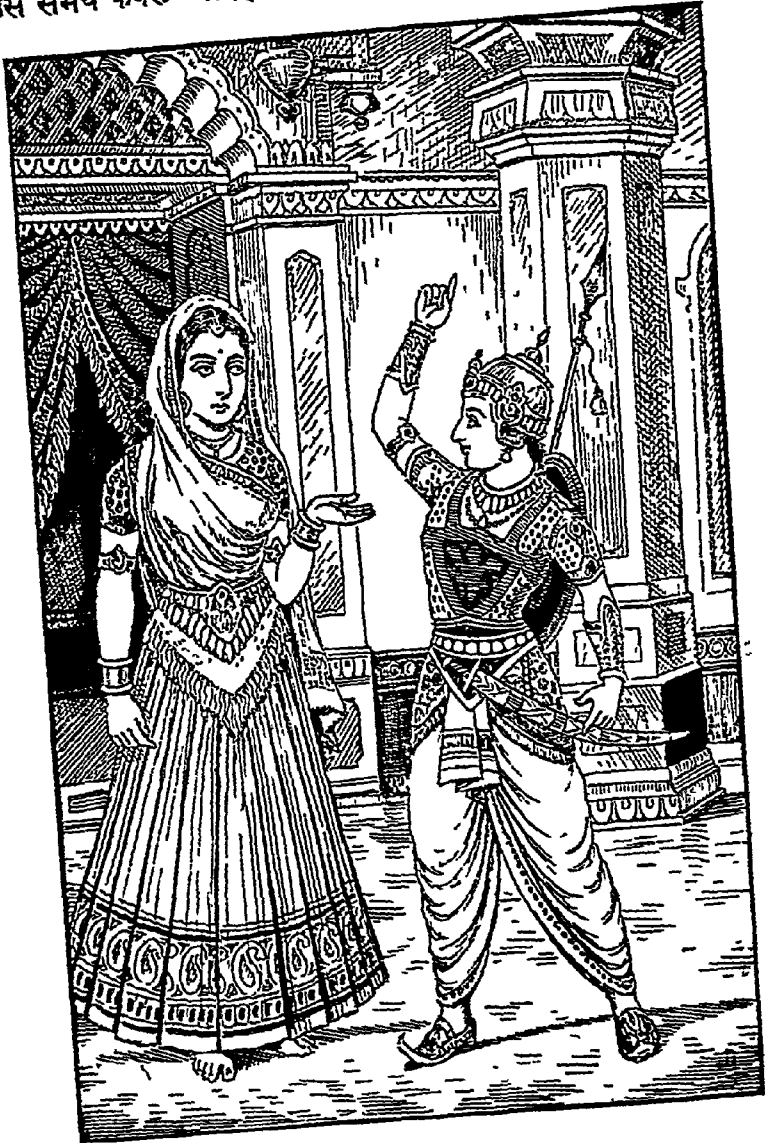
वीरता से काम लिया, वह इतिहास का एक स्तुत्य अङ्ग है। रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने गोरा-बादल को एक ही व्यक्ति माना है, परन्तु कर्नल टॉड तथा अन्य इतिहासकारों के मत से गोरा और बादल दो थे। एक चाचा था, दूसरा भतीजा।

गोराकी रानी ने उससे कहा—'तुम मेरे पति के पराक्रम का वर्णन करो; मुझे बतलाओ कि किस तरह शत्रुओं और विधर्मियों को राजपूतों ने रणभूमि में मटियामेट किया। मैं साके का वीरतापूर्ण वर्णन सुनकर आनन्दपूर्वक पतिलोक में जाना चाहती हूँ।

बादल ने कहा—'मा, पूज्य काकाजी को ही तो इस रण में वास्तविक सफलता मिल सकी। उन्होंने शत्रुओं के खून से रँगे शवों को अपनी सेज बनाया। एक यवन शाहजादा वीरगति को प्राप्त होकर तकिये का काम दे रहा था।' बादल ने कहा—'मैं उन्हें उस मृत्यु-सेज पर सोते छोड़कर आ रहा हूँ। शत्रुओं ने उनकी मृत्यु-शय्या घेर ली है।' उसने बादल से पूछा कि पति ने किस तरह शत्रुओं से रण किया। उस सुकुमार बालक के मुख से निकल ही तो पड़ा, 'काकी! उसकी वीरता का बखान करनेवाला तो कोई रह ही नहीं गया। रण में उसने किसी भी शत्रु को छोड़ा ही नहीं, जो उसकी वीरता की कहानी कह सकता।'

एक विशाल चिता तैयार की गयी। अग्नि की ज्वाला

प्रज्वलित हो उठी। गोरा की वीरपत्नी ने कहा—'प्रियतम को मेरा अभाव खटकता होगा।' वह अविलम्ब जलती चिता में कूद पड़ी। गोरा की रानी का सतीत्व अमिट है।

शिलाद-पत्नी दुर्गावती

'हम लोगों ने खून की नदी बहा दी थी, महाराज!' खिन्न सैनिक ने कहा। 'पर महाराज को बहादुरशाह के क्रूर सैनिकों ने बन्दी बना लिया।' सैनिक ने सिर नीचा कर लिया।

'बहादुरशाह तो हुमायूँ का एक छोटा सरदार है' रायसेन दुर्ग के अधिपति शिलाद के छोटे भाई लक्ष्मण ने रोष के साथ उत्तर दिया। 'यदि स्वयं हुमायूँ भी आ जाता तो मैं उसका मुकाबला करता। उस नीच ने भैया को गिरफ्तार कर लिया तो मैं तो हूँ। एक राजपूत के भी रहते म्लेच्छ रायसेन-दुर्ग को स्पर्श तक नहीं कर सकता।'

तलवारें चलने लगी। राजपूतों ने लोथ-पर-लोथ गिराना शुरू कर दिया। मुसलमान गाजर-मूली की तरह कटने लगे। पर वे टिड्डी-दल की भाँति बढ़ते ही जा रहे थे। मुट्ठी भर राजपूत समाप्त प्राय हो चले।

× × × ×

'सहज में ही दुर्ग छोड़ देने पर हम आपके भाई को सकुशल

मुक्त कर देंगे और दुर्ग के किसी भी स्त्री-पुरुष को कोई क्षति नहीं पहुँचायँगे। आपकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी, अन्यथा युद्ध के लिये हम विवश हैं।' लक्ष्मण ने बहादुरशाह के पत्र को एक ही साँस में पढ़ लिया।

शिलाद के भाई लक्ष्मण विचार-तरङ्गों में डूबने-उतराने लगे।

× × × ×

'भाभी! दुर्ग छोड़ कर अभी-अभी मेरे साथ चली चलो। लक्ष्मण ने घबराहट से कहा। 'यवन दुर्ग में प्रवेश करना ही चाहते हैं।'

'कायर और निर्लज्ज कहीं का!' गरज कर शिलाद की पत्नी दुर्गावती ने कहा—'भाई के बंदी होने पर दुर्ग शत्रु को सौंप कर जनानखाने में छिपता है? धिक्कार है तुझे।' दुर्गावती अपने ही दाँतों अपना होट काट रही थी।

'दुर्ग के स्त्री-पुरुषों की प्रतिष्ठा बचाने के लिये मैंने ऐसा किया है, भाभी!'

'मुँह में कालिख लगाकर मेरे सामने से अभी हट जा, कायर कहीं का!' शिलाद की पत्नी अपने वश में नहीं थी। उसकी आँखें जल रही थीं। अत्यन्त घृणा से उसने कहा—'राजपूतों में कलङ्क लगाने वाले तुझ-जैसे अधम राजपूत नहीं ही मिलेंगे। तू प्राण बचाकर भाग जा, पर हम तो वीर राजपूत की पत्नी हैं।'

× × × ×

मुसलमानों ने बड़े उत्साह से 'अल्लाहो अकबर' का नारा
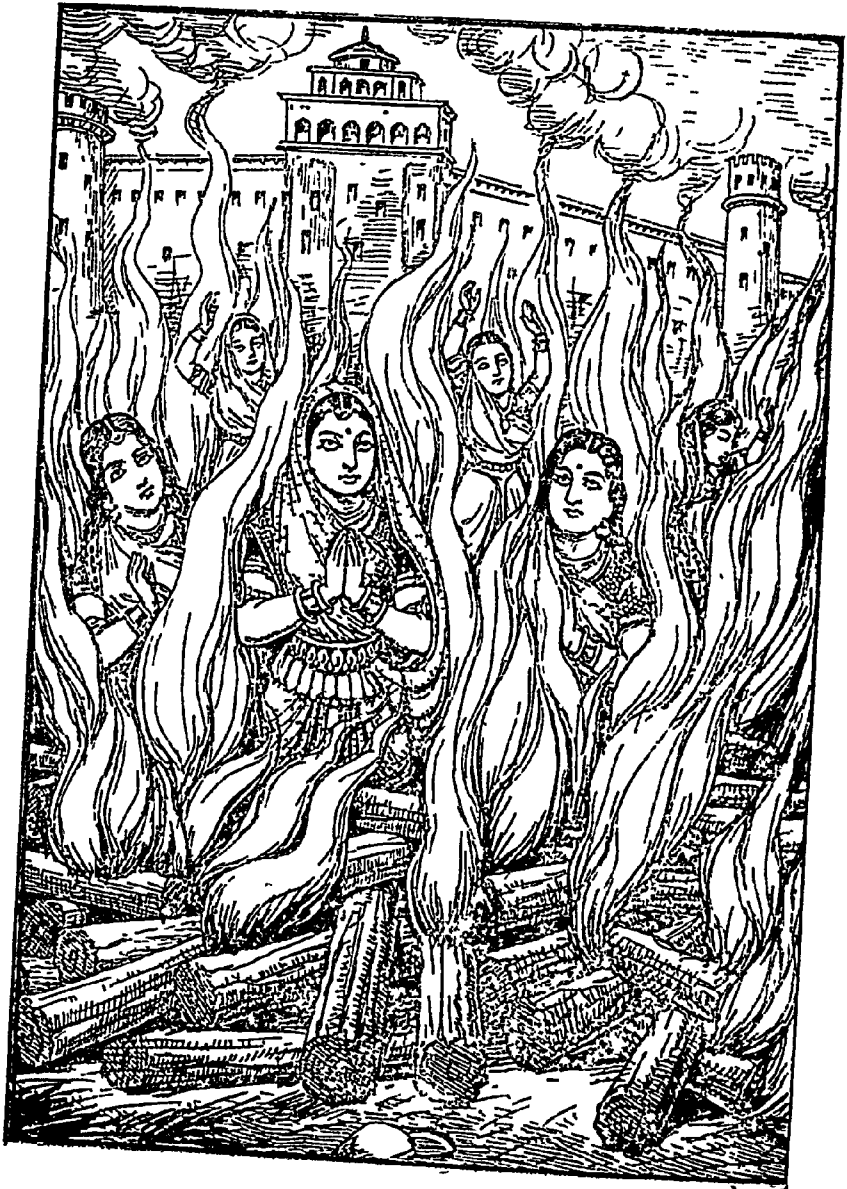
लगाते हुए दुर्ग में प्रवेश किया, पर उन्होंने देखा कि भीतर चारों ओर भयंकर आग लगी हुई है। वह समस्त मुस्लिम सैन्य के बुझाने से भी नहीं बुझ सकती थी।

तीन दिनों तक सेना दूर ही पड़ी रही। अन्त में उन्हे वहाँ राख के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सका। सब-के-सब शिलाद्-पत्नी दुर्गावती की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

सतीत्व-रक्षण का जितना उज्ज्वल और ज्वलन्त उदाहरण भारत के इतिहास में मिलता है, वैसा अन्यत्र अत्यन्त दुर्लभ है।

सती संयोगिता

संयोगिता महाराज पृथ्वीराज चौहान की रानी थी। उसके सतीत्व की कहानी, पातिव्रत्य की गाथा और वीरत्व की कथा प्रत्येक भारतीय घर में कही जाती है। उसके स्वयंवर की घटना का स्मरण होते ही रोमाञ्च होने लगता है। उसे अभिनव दमयन्ती कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जिस तरह महाराज नल की सेवा में ही दमयन्ती ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, उसी तरह भारत के सम्राट् पृथ्वीराज की पटरानी ने महान् पातिव्रत्य-धर्म का परिचय दिया।

बारहवीं सदी के हिन्दुस्तान में कन्नौज के राजा जयचन्द और पृथ्वीराज दिल्लीपति सार्वभौम सम्राट् होने की बलवती इच्छा कर एक दूसरे से निपटने की तैयारी कर रहे थे। इसका एकमात्र कारण यह था कि पृथ्वीराज की वीरता और शासन-दक्षता पर मुग्ध होकर उनका नाना अनङ्गपाल मरते समय उनको अपना राज्य दे गया था। इस तरह पृथ्वीराज की राजसत्ता अजमेर और दिल्ली दोनों राज्यों में स्थापित हो गयी और पृथ्वीराज का मौसेरा भाई जयचंद केवल कन्नौज का ही अधिपति हो सका। इस समय गोरी का आक्रमण हो रहा था, जयचंद पृथ्वीराज को नीचा दिखाने का उत्तम अवसर देखकर सेना सुसज्जित करने लगा। जयचंद ने पृथ्वीराज को सम्राट् मानने से इन्कार कर दिया। टॉड लिखता है कि वह स्वयं अपने आपको चक्रवर्ती सम्राट् घोषित करना चाहता था। उसने कई राजाओं को अपनी ओर मिला कर एक बहुत बड़े राजसूय-यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें भारतवर्ष के प्रायः सभी नरेश सम्मिलित थे। समरसिंह और पृथ्वीराज की प्रतिमाएँ द्वारपाल के स्थान पर रख दी गयीं। जयचंद ने यह घोषणा करवा दी थी कि इसी यज्ञ में उसकी बहिन संयोगिता स्वयंवर करेगी। यथासमय संयोगिता स्वयंवर में पहुँची। संयोगिता तो मन-ही-मन पृथ्वीराज को आत्मसमर्पण कर चुकी थी। उसने पृथ्वीराज की प्रतिमा के गले में माला डाल दी। जयचंद आगबबूला हो उठा; लेकिन वह राजपूतकन्या यह

कहती भीतर चली गयी कि 'जिसको मैं एक बार मन से वर

चुकी, उसके अतिरिक्त संसार के सब पुरुष मेरे बन्धु और पुत्र के समान हैं।' पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई की, जयचंद को पराजित कर वह संयोगिता को साथ लेकर दिल्ली चले आये। अब तो वैमनस्य का बीज बढ़कर विष-वृक्ष हो गया। यही कारण था कि जब पृथ्वीराज गोरी से हिन्दुस्तान के भाग्य का फैसला कर रहा था, जयचंद तमाशा देखता रह गया। इतिहासकार टॉड ने इस उदासीनता का कारण संयोगिता का पृथ्वीराज द्वारा अपहरण बतलाया है।

सन् ११६१ ई० में तराई के युद्धस्थल में विधर्मी सेना का सामना करने के लिये फरिस्ता के कथनानुसार पृथ्वीराज दो लाख घुड़सवार तथा तीन हजार हाथियों की सेना लेकर आ डटे। रण के लिये प्रस्थान करते समय संयोगिता ने अपने पति से, हिन्दुस्थान के सम्राट् से कहा कि 'प्राणनाथ! आप रण में जाकर शत्रुओं का मान मर्दन कर उन्हें उचित दण्ड दें। आप पार्थिव शरीर की थोड़ी भी चिन्ता न करें, आपकी कीर्ति अमर रहेगी।' घमासान संग्राम हुआ, मुहम्मद गोरी की सेना मारी गयी। यह हिन्दुओं की बहुत बड़ी विजय थी। तबेकात-नसीरी के लेखक मिनहाज सिराज का कथन है कि सुल्तान घोड़े की पीठ-पर सवार होकर रण से भाग गया; लेकिन रणस्थल से कुछ ही दूर गया था कि उसका घोड़ा चल बसा। इस्लामी सेना हार गयी। सुल्तान बुरी तरह घायल हो चुका था; परन्तु एक वीर सिपाही की सहायता से उसकी जान बच गयी।' उसने

फिर आक्रमण किया, इस बार पृथ्वीराज कैद कर लिये गये। और रासो के अनुसार गोर में उनकी मृत्यु हो गयी।

सती संयोगिता ने जब पति की मृत्यु का समाचार सुना, तब उसने एक आर्य नारी की तरह अपना धर्ममूलक कर्तव्य पालन किया। संयोगिता ने पृथ्वीराज को अपने हाथों महान् वीर सज्जा से सजाकर रणाङ्गण में भेजते समय महाराज से कहा था, 'ऐसा दीखता है कि यह अन्तिम विदा है।' और उसी दिन से पति की अनुपस्थिति में पातिव्रत-धर्म का पालन करने के लिये उस सम्राज्ञी ने केवल जल पीकर ही अपने शेष दिन बिताये। पति के परलोक-गमन पर उसने चिता में अपने पवित्र शरीर को स्वाहा कर सहगमन का सुख भोगने के लिये पति-लोक की यात्रा की।

नीरकुमारी

राजपूतों में एक-दूसरे के प्रति मान-अपमान तथा प्रतिद्वन्द्विता की भावना के विद्यमान रहते भी कर्तव्यपरायणता और वचनबद्धता ने उन्हें वीर-जाति के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान दे रक्खा है।

केवल दो सौ साल पहले की बात है, मारवाड़-नरेश अजीतसिंह के पौत्र रामसिंह और अजीतसिंह के द्वितीय पुत्र भक्तसिंह

में बहुत विकट युद्ध हुआ। रामसिंह शासक थे, इसलिये

भक्तसिंह ने उनके विरुद्ध राजद्रोह किया। कुछ सरदार राजा की ओर थे और कुछ इने-गिने सरदारों ने विद्रोही का साथ दिया। मेहोत्री सरदार राजा के पक्ष में था। उसके पुत्र की वीरता प्रसिद्ध थी, परन्तु वह रण में उपस्थित नहीं था। मेहोत्रीकुमार नीर के सरदार की कन्या से विवाह करने गया था। राजदूत ने मण्डप में ही आकर उससे रण की सारी बातें बतायीं ; सामने सुन्दर स्त्री थी, चारों ओर मङ्गलस्वरों का घोष हो रहा था। किसी तरह आवश्यक विधियाँ पूरी कर उसने वर के वेष में ही रण-यात्रा की। चलते समय उसने विवाहिता स्त्री से कहा—'मैं राजपूत वीर हूँ, तुम राजपूत बाला हो। जीवित रहने पर फिर मिलेंगे।' राजपूतानी के शरीर में बिजली दौड़ गयी, उस वीर-वधू ने कहा—'यहाँ नहीं, तो वहाँ अवश्य ही मिलेंगे।' पति ने रण की ओर प्रस्थान किया और नीर-कन्या ससुराल गयी।

वीर और वीराङ्गना की सुहागरात्रि भी विचित्र थी। पत्नी ने ससुराल पहुँचकर देखा कि पति का शव चिता पर रक्खा है। वह पति के शव से लिपट गयी। चिता की आग जल उठी। एक घड़ी के भी सम्बन्ध ने पति-पत्नी को कड़ी अग्नि-परीक्षा में पवित्र कर दिया। वह सच्चे रूप में सहधर्मिणी थी, इस तरह के सहमरण या सहगमन का उदाहरण विश्व-इतिहास में कम मिलेगा।

सती प्रभावती

सती प्रभावती गुन्नौर के राजा की रानी थी; रूप, लावण्य और गुणों में उसके समान उस समय कोई-कोई ही थीं। उसकी सुन्दरता की ख्याति पर मुग्ध होकर निकटस्थ यवनाधिपति ने गुन्नौर पर चढ़ाई की। रानी बड़ी वीरता से लड़ी। बहुत-से राजपूत और यवन सैनिक मारे गये। जब थोड़ी-सी सेना शेष रह गयी, रानी गुन्नौर किले से नर्मदा किले में चली गयी। गुन्नोर पर यवनों का आधिपत्य स्थापित हो गया। यवनसेना ने उसका पीछा किया। रानी ने किले के फाटक बंद करवा लिये। बहुत से राजपूत मारे गये। यवनाधिपति ने रानी को पत्र लिखा कि 'तुम आत्मसमर्पण कर दो।' उसने यह भी लिखा था कि 'तुम मेरे साथ विवाह कर लो; मैं राज्य लौटा दूँगा और दास की तरह रहूँगा।' रानी पत्र पाकर क्रोध से जल उठी; पर अन्य उपायों से रक्षा न होती देख कर उसने कूटनीति से उस दुष्ट को उचित शिक्षा देनी चाही। रानी ने उसे लिखा 'कि मैं विवाह करने के लिये तैयार हूँ, किन्तु विवाह योग्य पोशाक आपके पास तैयार नहीं है। मैं पोशाक भेजती हूँ, आप उसीको पहनकर पधारें।' वह नराधम अत्यन्त प्रसन्न हुआ; उसने नहीं सोचा कि राजपूत-रमणियों से ऐसा व्यवहार करने के लिये प्राणों की भी बलि देनी पड़ती है। दूसरे दिन रानी ने पोशाक भेज दी।

दुष्ट यवन शादी की पोशाक पहन कर महल में पहुँचा। रानी

का दिव्य रूप देखकर वह दुष्ट चिल्ला उठा—'यह तो अप्सरा है।' रानी उसे देखती रही, थोड़ी ही देर में यवन की विकलता बढ़ने लगी। वह पीड़ा से व्याकुल हो उठा। आँखों तले अँधेरा छा गया और कपड़े फाड़ता हुआ वह छटपटा कर कहने लगा—'अरे! मैं तो मरा।' रानी ने उस नीच से कहा—'खाँ साहेब! अब आपकी अन्त की घड़ी आ पहुँची है। मेरे बदले मृत्युदेवी से विवाह हो रहा है। आपकी कामान्धता से सतीत्व-रत्न की रक्षा के लिये इसके अतिरिक्त और उपाय ही नहीं था कि आपकी मृत्यु के लिये विष से रँगी पोशाक भेजती।' इतना कहकर उस सती ने ईश्वर का नाम लिया और फिर नर्मदा नदी की पवित्र लहरियों में कूदकर अपने प्राण त्याग दिये। यवन भी वहीं पर तड़प-तड़प कर मर गया।

प्रभावती के सतीत्व की प्रभा से गुन्नौर राज्य का कोना-कोना आलोकित हो उठा। उसका जीवन धन्य था।

महारानी अहल्याबाई

महारानी अहल्याबाई इन्दौर के राजाधिराज खण्डेराव की राजरानी और मल्हारराव होल्कर की पुत्र-वधू थीं।

सतरहवीं सदी के समाप्त होने पर मराठों ने जोर पकड़ा। हिन्दूपदपादशाही की स्थापना का आरम्भ छत्रपति महाराज

शिवाजी ने किया था। बाजीराव पेशवा ने उसकी पूर्ति की। बाजीराव के स्वामिभक्त सहायकों में दामाजी गायकवाड़, राणोजी सिन्धिया और मल्हारराव होल्कर के नाम उल्लेखनीय हैं। इस समय मराठों की सेनाएँ विजय-सम्पादन में लगी थीं। एक बार गुजरात के किसी विद्रोही दल का दमन करने मल्हारराव पूना जा रहे थे। उन्होंने पाथरड़ी के शिव-मन्दिर में डेरा डाल दिया। आनन्दराव अथवा मनकोजी सिन्धिया की होनहार कन्या अहल्या को उन्होंने यहीं देखा। उन्हें वे राजधानी इन्दौर में लाये और अपने पुत्र का उनसे विवाह कर दिया। दम्पति सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे।

राज-वधू होने पर भी दरिद्र-कन्या अहल्या ने कभी गर्व नहीं किया। वे सास ससुर की पूजा और सेवा-शुश्रूषा में एक आदर्श हिन्दू-कुलवधू की तरह लगी रहती थीं। जन्म से ही भगवद्भक्त थीं। पूजा-पाठ के साथ राजप्रबन्ध में भी पति और ससुर को पूरा-पूरा सहयोग देती थीं। थोड़े ही दिनों में उन्हें एक पुत्र और एक कन्या पैदा हुए। उन्होंने नौ साल तक दाम्पत्य-सुख भोग किया। विधाता से उनका सुख और ऐश्वर्य न देखा गया। परमात्मा ने उन पर संकटों की आग बरसाकर उनके धैर्य और साहस की कड़ी परख की। खण्डेराव ने स्वर्गलोक की यात्रा की। अहल्या ने आत्मयज्ञ करना चाहा; परन्तु सास-ससुर ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और उन्हें भी विश्वास हो गया कि यदि मैं उनकी आज्ञा की अवहेलना करूँगी तो

इन्दौर की राज्यश्री लुट जायगी, प्रजा अनाथ हो जायगी और मराठों के आदर्श हिन्दू-राज्य की स्थापना की आशा पर पानी फिर जायगा। उन्होंने निर्भीकता से कहा कि यदि इस जन्म में नहीं तो अन्य जीवन में अवश्य ही स्वामी से मिलूँगी। मल्हार-राव ने उसे सारे अधिकार सौंप दिये। सन् १७६१ में पानीपत के युद्धस्थल से लौटने पर उसने अहल्या की शासन-दक्षता की बड़ी प्रशंसा की।

सन् १७६५ ई० में मल्हारराव का देहान्त हो गया। अहल्या का पुत्र मालेराव गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त क्रोधी, उतावला और दुष्ट हृदय का पुरुष था। कहाँ तो उसकी माता ब्राह्मणों के सामने मस्तक झुकाती थी और कहाँ वह नीच उन्हें कोड़े लगवाता था! क्रमशः उसके पापों का घड़ा भर गया और कुछ दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गयी!

बाजीराव पेशवा का देहान्त होने पर माधवराव पेशवा बनाये गये। उनका चाचा रघुनाथराव व्यसनी, कपटी और मूर्ख था। इन्दौर के मन्त्री गङ्गाधर यशवन्त के भड़काने पर वह अहल्या को राज्य से निकाल कर इन्दौर पर अधिकार करने की इच्छा कर बैठा। इन्दौर की राजमहिषी ने गायकवाड़ और भोंसले की सहायता माँगी। दोनों ही उसकी ओर से लड़ने के लिये आ पहुँचे। इधर अहल्या ने अपने सरदारों और सैनिकों से कहा, 'माना, हम पेशवा के अधीन हैं; पर उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे हमारा राज्य अकारण छीन

लें। मुझे अबला समझकर रघुनाथराव ने इन्दौर पर हमला कर दिया है। परन्तु मैं उन्हें बतला दूंगी कि मैं सामान्य अबला नहीं हूँ। वीरस्नुषा और वीर-वधू हूँ। जिस समय रण में तलवार लेकर खड़ी हो जाऊँगी, पेशवा का सिंहासन हिल उठेगा। सत्य पर चलने वालों की सहायता परमात्मा करता है।' उनके सैनिक मरने-मारने को तैयार हो गये; परन्तु वह नहीं चाहती थीं कि अकारण रक्तपात हो; इसलिये उन्होंने पेशवा को पत्र लिखा,—'मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि आप मेरा राज्य अपहरण करने ससैन्य आ रहे हैं। यह राज्य आपका ही है; किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि आप इसे अन्याय पूर्वक छीन लें और इसलिये मुझे भी शस्त्र द्वारा आपका अभिवादन करना पड़ेगा।' माधवराव को आक्रमण के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं था; उसने रानी को लिख दिया कि 'यदि इस तरह कोई राज्य अपहरण करना चाहे तो उसे दण्ड देने का पूर्ण अधिकार है। मैं तुम्हारे राज्य प्रबन्ध और कार्य कुशलता से सन्तुष्ट हूँ।

रघुनाथराव क्षिप्रा नदी तक बढ़ आया; पर प्रतिरोध की काफी तैयारी देखकर वह डर गया और उसने रानी के पास कहला भेजा कि 'मैं तो केवल देखना चाहता था कि तुम शत्रुओं से किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकती हो।' तदनन्तर वह अतिथि रूप में कुछ दिनों तक इन्दौर के किले में रहा और फिर अपना-सा मुख लेकर राजधानी में लौट आया।

रानी बड़ी क्षमाशील थीं ; यद्यपि वे जानती थीं कि सारे झगड़े की जड़ गंगाधर यशवन्त है, फिर भी उन्होंने क्षमा करके उसको राज्य में स्थान दिया। उनकी राजनीतिज्ञता की कीर्ति चारों और फैल गयी। उनके राज्य में सदा शान्ति बनी रही। वे शासन करने में जिस तरह कठोर थीं, दया करने में भी उतनी ही उदार थीं। साथ ही घोड़े की पीठ पर सवार होकर रण में कूद पड़ना भी उनके लिये साधारण काम था। भारत-देश के प्रायः सभी तीर्थ-स्थानों में उनके देव-मन्दिर तथा अन्नसत्र आदि स्मारक स्वरूप खड़े हैं। प्रजा-पालन उनके शासन-प्रबन्ध का एक विशिष्ट अङ्ग था।

एक बार कुछ भीलों ने विद्रोह किया था, पर रानी ने उन्हें अपनी कूटनीति और वीरता से अपने वश में कर लिया।

रानी बड़ी सत्यपरायणा थीं। उनके खजाने में करोड़ों रुपये थे। वे उन्हें दान-धर्म में खर्च करना चाहती थी। रघुनाथराव ने किसी लड़ाई की सहायता के लिये रुपये माँगे ; रानी ने सीधा जवाब दे दिया कि 'ये रुपये दान-धर्म के लिये हैं। आप ब्राह्मण हैं ; यदि मन्त्र पढ़कर लेना चाहें तो मैं संकल्प करने के लिये प्रस्तुत हूँ।' रघुनाथराव एक बड़ी सेना लेकर आ पहुँचा, रानी ने पाँच सौ स्त्रियों के साथ युद्ध-क्षेत्र में उसका स्वागत किया। उन्होंने रघुनाथराव से कहा कि, आप राजा हैं, आपके साथ द्रोह करना मैं उचित नहीं समझती। आप हमें मार-कर रुपये ले जायँ।' पेशवा रानी के साहस पर आश्चर्यचकित

हो उठा। वह लौट गया। अहल्या शान्ति पूर्वक राज करने लगीं।

राज्य प्राप्त होने पर मद न हो और लोभ की मात्रा न बढ़े, ऐसा बहुत कम होता है। अहल्याबाई में मद तो था ही नहीं। लोभ का लेश भी नहीं था। इसीसे लोभी राजाओं की भाँति खून, विश्वासघातकता तथा अनाचारों के द्वारा उनका जीवन कलङ्कित नहीं हुआ। वे रानी की हैसियत से सदा प्रजा के अभावों को दूर करने तथा उसे सब प्रकार से सुख-सुविधा प्रदान करती रहीं और हिन्दू नारी की हैसियत से पूजा-अर्चना, अतिथि तथा ब्राह्मणों की सेवा, दूसरों के धर्म-साधन में सहायता और दुखियों के दुःख-निवारण आदि परोपकारी सत्कार्यों में संलग्न रहीं। प्रजा का हित हो और उसकी उन्नति हो—यही उनके कार्यों का मुख्य ध्येय रहता था। प्रजाहित, राज्यहित तथा अपने पवित्र वंश की मान मर्यादा-रक्षा के लिये जितना कार्य करना आवश्यक था, वे उतना ही करती थीं। शेष समय तथा मन भगवच्चिन्तन में लगाती थीं।

उनका पारिवारिक जीवन सन्तोषजनक नहीं था। केवल उनकी एक कन्या मुक्ताबाई बच गयी थी। कालान्तर में वह भी विधवा हो गयी और पति के साथ चिता में जलकर स्वर्ग सिधार गयी थी।

अहल्याबाई अद्वितीय गुणवती देवी थीं, उनमें अभिमान नाममात्र को भी नहीं था। वह आदर्श आर्य-नारी और निपुण

शासक थीं। किसी ब्राह्मण ने उनकी प्रशंसा में एक पुस्तक रच

डाली। रानी ने पुस्तक सुन ली और यह कह कर उसे नदी में फेंकवा दिया कि 'मेरे समान पापिनी में इतने गुण नहीं है।' बार-बार वे ईश्वर से यही कहती थीं कि 'प्रभो ! तुम ने पत्थर की अहल्या का उद्धार किया है, मुझे भी अपनाकर भवसागर से पार कर दो।'

एक दिन उन्होंने बारह हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराया और उनके चरण-तीर्थ से पवित्र होकर स्वर्ग चली गयीं।

उनकी अवस्था उस समय साठ साल की थी।

अहल्याबाई महान् धर्म-परायण, तपस्विनी और तेजस्विनी नारी थीं। इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है।

सती कोडमदे

स्त्री-जाति का परम धन सतीत्व है। सती-धर्म के द्वारा ही स्त्री पुरुष के निकट सब से अधिक सम्मान योग्य हो जाती है। शील और सतीत्व के बिना स्त्री की सुन्दरता दो कौड़ी की है। सती कोडमदे परम रूपवती होने के साथ ही साथ शीलवती थी। विपत्तियों का सामना करने के लिए यह सदैव तैयार रहती थी।

कोडमदे मोहिल राजपूत सरदार माणिकराज की कन्या थी।

उसका जन्म स्थान ओड़ींट था। पिता उसे प्राणों से बढ़कर मानता था। कन्या का बाल्यकाल बड़े आनन्द और सुख शान्ति से बीता। धीरे-धीरे उसने तरुणावस्था में प्रवेश किया।

जैसलमेर में पूंगल नामक एक भाटी राज्य था। राजा राणांगदेव पूंगल में राज करता था। उसका पुत्र सादूल बड़ा पराक्रमी था। पश्चिम में सिन्धुनद और पूर्व में नागौर तक के लोग उसके प्रताप से कांपते थे। लाखा फूलाणी की भाँति सादूल भी अपने भुजबल के भरोसे जीवन बिताता था।

एक बार वह किसी नगर से कुछ ऊँट और घोड़े जीतकर मोहिलों की राजधानी ओड़ींट के समीप से होकर अपने नगर को जाता था। उसकी कीर्ति-कहानी माणिकराज के कानों में भी पड़ चुकी थी। शुभ अवसर जानकर राजा माणिकराज ने उसे अतिथि रूप से अपने घर बुलाया। सादूल उसके निमन्त्रण को स्वीकार कर यथा समय उसके घर पहुँचा। माणिकराज, वीर सादूल के निकट बैठ उसकी वीरत्व सूचक बातें सुनने लगा। बातें सुनकर परम प्रसन्न हुआ। समस्त वीरत्व-वार्ता, कोडमदे के कानों में अमृत की धारा बरसा रही थी। वह एकाग्र चित्त से उस पाहुने भाटी वीर के वचनामृत का पान कर रही थी।

माता पिता की जीवन स्वरूपिणी कोडमदे जन्म से ही सुख की गोद में पली थी। मरुभूमि में वह परम सुन्दरी कन्या थी।

मंडोराऽधिपति चूंडाराव के चतुर्थ पुत्र अर्डकमाल से उसके विवाह का सम्बन्ध स्थिर होगया था। विवाह भी शीघ्र ही होने वाला था, इस कारण विवाह की दोनों ओर से तैयारियाँ हो रही थीं। परन्तु वह सम्बन्ध कोडमदे को अबतक न भाया था। उसने लोगों से सादूल की वीरता का वर्णन सुना था; सुनकर उसी समय उसको मन ही मन अपना पति स्थिर कर लिया था। आज उस मनोनीत पति को सामने देखकर और अपने कानों से उसकी वीरता श्रवण कर वह अपने हृदय के भाव प्रकट किये विना न रह सकी। उसकी सहेलियों ने उसे वहुत समझाया परन्तु उसने एक नहीं मानी। वह सखी सहेलियों से कहने लगी—'तुच्छ राजसिंहासन को लेकर क्या होगा, ऊँचे राठौड़ कुल की पुत्र-वधू होकर क्या करूँगी? मैंने जिसको प्राण, मन समर्पण किया है, उसीकी दासी होकर रहूँगी, दूसरे की स्त्री न होऊँगी।'

कोडमदे की इस कठोर प्रतिज्ञा को माता पिता ने भी सुना। उनका हृदय सहसा भय और दुःख से व्याकुल हो गया। राठौर कुल के साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध स्थिर कर माणिकराजं ने ऊँचे कुल के गौरव के प्राप्त की आशा को हृदय में पोषण किया था; किन्तु अभाग्य वश उसकी वह आशा पूर्ण न हुई। यदि कोडमदे राठौर राजकुमार से विवाह करने पर राजी न होगी तो मोहिल कुल के विरुद्ध राठौर वीर चूंडा की रोषाग्नि निश्चय ही प्रदीप्त होगी, निश्चय ही वह ओड़ींट नगर पर आक्रमण कर

मोहिल वंश का समूल नाश कर देगा। इन सब चिन्ताओं ने माणिकराज के हृदय में प्रवेश कर उसको विचलित कर डाला। वह कुछ भी स्थिर न कर सका कि मैं क्या करूँ। अन्त में पुत्री का ही स्नेह बलवान होने के कारण वह पुत्री की सम्मति स्वीकार करने को विवश हुआ। खान पान समाप्त हुआ। मोहिल राज माणिकराज ने सादूल के सम्मुख समस्त वृत्तान्त प्रगट किया और राठौर राजकुमार के साथ सम्बन्ध भंग करने से विपद की सम्भावना है, यह भी प्रकाश किया। तेजस्वी सादूल इससे कुछ भी भयभीत न हुआ। उसने कहा "यदि पूंगल नियमानुसार नारियल भेजा जाय, तो मैं आपकी पुत्री के साथ विवाह कर सकता हूँ।" उपरोक्त बातें होने के पश्चात् सादूल अपने नगर को चला आया। शीघ्र ही उसके यहाँ विवाह सम्बन्धी नारियल गया और थोड़े ही दिनों के बाद ओड़ींट नगर में विवाह कार्य समाप्त हो गया। माणिकराज ने इस विवाह में बहुत-सा दहेज दिया। बहुमूल्य मणि रत्नादि, नाना प्रकार के सोने चांदी के बर्तन, एक सुवर्ण की बैल की मूर्ति और तेरह राजपूत स्त्रियाँ माणिकराज ने वर कन्या को दीं।

इस विवाह का सम्वाद ब्राह्मण से शीघ्र ही अर्डकमाल ने सुना। वह अत्यन्त क्रोध और वैमनस्य से उन्मत्त-सा हो उठा, अस्तु सादूल को दण्ड देने की इच्छा से वह चार हजार राठौर सेना के साथ उसके मार्ग को रोककर खड़ा हो गया। इससे

पूर्व सादूल ने साँकला मेहराज* नामक एक मनुष्य को मार डाला था। इस समय उस पुत्र के शोक से व्याकुल उस वृद्ध पुरुष ने भी पुत्र का बदला लेने की आशा से राठौर राजकुमार का साथ दिया। माणिकराज ने यह सब समाचार पाकर सादूल से कहा। वीरवर सादूल माणिकराज की शंकाकुल बातों से कुछ भी न डरा, यहाँ तक कि मोहिलराज ने चार सहस्र सेना उसे अपने साथ ले जाने को कहा, परन्तु उसने सेना ले जाना भी अस्वीकार किया। अपनी भुजाओं के बल और अपने साथ की सात सौ शंभुरतन भाटी सेना के ऊपर उसका भली प्रकार से विश्वास था, परन्तु तो भी माणिकराज नें अत्यन्त विपत्ति की आशंका देखकर अपने साले मेघराज और उसके अधीन पचास सैनिकों को उसके साथ कर दिया।

इन साढ़े सात सौ सैनिकों के साथ भाटी वीर सादूल चन्दन नामक स्थान में पहुँच कर थकावट दूर करने लगा। रोषोन्मत्त राठौर वीर सेना सहित उस स्थान में जा पहुँचा। यद्यपि उसका सैन्य बल सादूल की अपेक्षा छः गुना था, परन्तु तो भी उसने अपने शत्रु के साथ केवल द्वन्द युद्ध करने की इच्छा प्रगट की। दोनों ओर के दल कुछ देर विश्राम कर रणभूमि में आये। सब से पहले भाटी की ओर का पाहू गोत्र वाला जयतुंग और राठौर की ओर का जोधा चौहान ये दोनों परस्पर सामने हुए।

---

* यह विख्यात वीर हड्वू साँकला का पिता था। सादूल के साथ इसने अनेक बार युद्ध किया था।

दोनों ने अपने-अपने घोड़ों को एक दूसरे के विरुद्ध बड़े वेग से दौड़ाया। दोनों ही अपने-अपने हाथ में तीक्ष्ण दुधारी तलवारें लिये थे। थोड़ी ही देर में वे भीषण तलवारें एक दूसरे के ऊपर चलने लगीं। तलवारों के परस्पर भिड़ने से अग्नि की चिनगारियाँ उड़ने लगीं और वह दोनों तलवारें सूर्य की किरणों से बिजली-सी चमकने लगीं। अर्डकमाल और सादूल दोनों अपनी-अपनी सेना के आगे खड़े होकर आनन्द सहित उस भीषण द्वंद युद्ध को देखने लगे। देखते ही देखते युद्ध भयानक हो उठा। अचानक जयतुंग एक घोर शब्द कर छलांग मार घोड़े समेत जोधा के ऊपर जा टूटा! जोधा उस विकट वेग को न सह सका। अतएव घोड़े सहित प्रथ्वी पर जा गिरा। जोधा फिर न उठा, शत्रु के प्रचंड आघात से उसका प्राण वायू चल बसा। विजय से उन्मत्त हुआ जयतुंग उस समय उस तीक्ष्ण तलवार को उठा शत्रु सेना की ओर दौड़ा और जिसको अपने बराबर का शत्रु समझा, उसीके ऊपर आक्रमण करने लगा। किन्तु उसका यथार्थ द्वन्द युद्ध न हुआ। वह एक के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो शेष न होते-होते दूसरे पर आक्रमण करने लगा। इससे एक घोर-विच्छिन्नता फैल गई और तत्काल ही द्वन्द युद्ध बंद होकर दल युद्ध का आरम्भ हुआ। दोनों दल के योद्धा भयानक सिंह की-सी गर्जना कर-कर एक दूसरे पर प्रचण्ड वेग से आक्रमण करने लगे।

अर्डकमाल और सादूल दोनों की इच्छा परस्पर द्वन्द युद्ध

करने की थी। अतएव सेना का व्यर्थ नाश होना विचार दोनों ने द्वन्द युद्ध में प्रवृत्त होने की इच्छा की। युद्धस्थल से दूर रथ पर बैठी हुई सुन्दरी कोडमदे रणरंग देख रही थी। सादूल इस समय अन्तिम विदा लेने के लिये उसके निकट गया। वीर नारी कोडमदे ने शान्त और गम्भीर स्वर से कहा 'जावो युद्ध करो मैं इसी स्थान पर रहकर आपका युद्ध कौशल देखूँगी और यदि आप समर भूमि में मारे गये तो आपही के साथ मैं भी परलोक को जाऊँगी।' कोडमदे की वीरता से भरी हुई बातें सुन सादूल का दिल दुगुना उभर उठा और वह प्रचण्ड वेग से शत्रु-दल के ऊपर जा टूटा। उसके हाथ में लिये हुए तीक्ष्ण शूल के प्रहार से कितने ही राठौर सैनिकों ने प्राण गवाँए।

इस प्रकार उन्मत्त की भाँति भ्रमण करता-करता वह राठौर राजकुमार अर्डकमाल के सामने आया। राठौर राजकुमार स्वयं सादूल के हृदय के रक्त से अपने घोर अपमान के धोने और हृदय की अग्नि को बुझाने के निमित्त इस समय तक गर्दन उठाये उसकी राह ही देख रहा था, सादूल को वह इस समय तक पहिचान न सका था इसी कारण क्रोध से उन्मत्त और अधीर होकर भी उसके आने की राह देखता हुआ भीतर अग्नि भरे हुए पहाड़ के समान अचल खड़ा था। इस समय उसने अपने समीप खड़े हुए शत्रु को भली प्रकार से पहिचाना और अपने पंच कल्याण नामक घोड़े को प्रचण्ड वेग से उसकी ओर चलाया। एक जन दूसरे के सन्मुख खड़ा हुआ नियमानुसार

क्षण भर तो सदाचार से व्यतीत हुआ। परन्तु थोड़ी ही देर में सादूल ने अपने शत्रु के मस्तक को ताककर तीक्ष्ण तलवार का प्रहार किया। किन्तु चतुर अर्डकमाल ने अत्यन्त शीघ्रता से उसको रोककर सादूल के मस्तक के ऊपर तलवार चलाई। उस समय दोनों ही वीर वज्र से टूटे हुए दो मेरु के शिखरों के समान पृथ्वी पर गिर पड़े। राठौर वीर मूर्च्छित हो गया था अतएव फिर उठ खड़ा हुआ; किन्तु भाटी वीर सादूल फिर न उठा। गिरते ही गिरते उसके प्राण निकल गये। युद्ध रुक गया। दोनों ओर के वीर वज्र से मारे हुए के समान क्षण भर खड़े रहे। फिर युद्ध को रोककर रण भूमि से कुछ-कुछ दूर हट गये।

पतिव्रता कोडमदे का आशा भरोसा टूट गया। उसने विचारा था कि, स्वामी के साथ रहकर बहुत समय तक सुख से दिन बिताऊँगी; किन्तु उस अभागिनी के सुख सम्बन्ध का बन्धन होते न होते वह सदैव के लिये उसे छोड़ गया। कहाँ है वह उसकी लावण्यमयी सुन्दर मूर्ति कि जिस हास्य मयी मूर्ति से उसने भाटी वीर सादूल के मन को हरण किया था; राठौर वीर अर्डकमाल ने जिस मूर्ति को अति यत्न से हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था, वह सुन्दर हास्य मयी सरला सुकुमारी मूर्ति कहाँ है? वह सुन्दर कान्तिमान मूर्ति वरमाला के साथ नवीन लाज के नये रंग से अभी पूरी पूरी छूटी भी नहीं थी कि विधवा पन के विषम जाल ने उसको अपने अधिकार में कर लिया।

कमल कली एक दिन में ही उत्पन्न और विकसित हो, कीड़े के काटने से गुच्छे से गिर पड़ी। किन्तु कोडमदे वीर नारी थी। उसने अपने प्राण-प्यारे को युद्ध में उत्साहित किया था, आज वह धर्म-युद्ध की रण-भूमि में प्राणों को न्योछावर करती है; उसके स्वर्ग का मार्ग स्वच्छ हुआ; स्वर्ग की देवाङ्गनाये पारिजात की माला हात में लिये उसके सत्कार के निमित्त स्वर्ग के द्वार पर आ खड़ी हुई। कोडमदे ने मानस-नेत्रों से यह सब कुछ देखा। उसके हृदय में विषाद की लहरें उमड़ने लगीं। हृदय स्वर्ग की इच्छा से उत्साहित हो उठा और वह पति के साथ जाने की तैयारी करने लगी; शीघ्र ही उस रणभूमि में एक बड़ी भारी चिता बनाई गई। मोहिल कुमारी ने तीक्ष्ण तलवार उठाई और एक हात से उसको पकड़ प्रसन्नता पूर्वक उसने अपने दूसरे हात को काट डाला। उसकी सखियें और सैनिक चुप-चाप खड़े हुए इस भयानक और सोचनीय कार्य को देखते रहे। कोडमदे ने वह कटी हुई भुजा अपने ससुर को देने के निमित्त एक सैनिक को दे धीर और गम्भीर स्वर से कहा 'कहना कि तुमारी पुत्र-वधू इस प्रकार की थी।' तदनन्तर उसने अपने दूसरे हाथ को फैला कर निकट में खड़े हुए एक सैनिक से कहा 'मेरे इस हात को भी काट डाल।' कोडमदे के मुख-मण्डल ने एक अपूर्व तेजोमयी मूर्ति धारन की थी, उसके दोनों विशाल नेत्रों से एक प्रकार की अद्भुत ज्योति प्रज्वलित हो रही थी; इसी कारण उस सैनिक ने तुरन्त महारानी की आज्ञा का पालन किया।

एक ही चोट से बाँह कट गई। दर्शक गण शोक और विस्मय

के मारे हृदय-वेधी शब्द करने लगे। उनके रोने से आकाश गूँज उठा। परन्तु कोडमदे के उस अपूर्व कान्तिमान् मुख-मण्डल पर उदासी या मलिनता के चिह्न तक न दिखाई दिये। उसने धीर और अकम्पित स्वर से उस दूसरी कटी हुई भुजा को मोहिल कुल के भाट कवि को देने की आज्ञा दी और प्राण-पति के मृतक शरीर को ले वह चिता पर चढ़ गई।

आज्ञा के अनुसार रानी कोडमदे की दोनों भुजाएँ यथा आदेश भेज दी गई। पूँगल के बूढ़े राव राणांगदेव ने उस भुजा को भस्म करके उस स्थान में एक पुष्करणी की प्रतिष्ठा की। वह पुष्करणी आज तक भी 'कोडमदे सर' नाम से पुकारी जा कर उस वीर नारी के नाम को अमर कर रही है।

यह अनर्थकारी अपूर्व संग्राम सन् १४०७ में हुआ था। इस घोर युद्ध में राठौरों के सांकला गणों ने अत्यन्त वीरता प्रगट की थी। उनके ३०० सैनिकों में से केवल पचास सेनापति मेहराज के साथ युद्ध भूमि से लौटे थे। मेहराज भी अत्यन्त घायल हुआ था। अर्डकमाल और उसके चार भाइयों को भी घायल होना पड़ा था। वे घाव जो उसके शरीर में हुए थे छः महीने में ऐसे विषम हो उठे कि उनसे ही उस संतप्त राठौर राजकुमार के प्राण निकल गये।

समाप्त

सूचना

'भारतीय वीराङ्गना' का द्वितीय भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा। पुस्तक कैसी होगी, इसका अन्दाजा तो पाठक प्रथम भाग से भली भाँति लगा सकते हैं। सती पद्मिनी के 'जौहर की ज्वाला' (अग्नि प्रवेश) वाला बहुरंगा चित्र बड़ा आकर्षक बना है। इसमें निम्न लिखित वीराङ्गनाओं के सचित्र चरित्र रहेंगे—

१ पद्मिनी
२ वीराङ्गना कर्मदेवी
३ उर्मिला
४ जवाहर बाई
५ दुर्गावती
६ राणा हम्मीर की पत्नी
७ वीराङ्गना वीरा
८ वीर कन्या ताजकुँवरी
९ सुमति
१० करुणावती (कर्मवती)
११ हाडीरानी
१२ रूपकुमारी
१३ वीर माता देवलदेवी
१४ कमलादेवी
१५ रानी साहबकुँवरि
१६ वीराङ्गना रूपसुन्दरी
१७ क्षत्राणी विदुला
१८ रानी कलावती
१९ रानी राजबाई
२० पुष्पावती
२१ मलयबाई देसाई
२२ वीराङ्गना ताराबाई
२३ सुन्दरबाई
२४ सती जसमा
२५ सती रूपमती
२६ कृष्णकुमारी इत्यादि